प्रकाशक—
परमात्मा शरण
अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य
प्रकाशन परिषद्,
मेरठ।

प्रथम संस्करण— मार्च १९५२

मूल्य २॥)



शारदा

प्राणाधिके !

इस जन्म की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए मैं तुम्हें यह 'हिमाचला' भेंट करता हूँ !

जन्म-जन्म तक तुम्हारी मरम सुधियाँ, पुष्प में सौरभ के समान, मेरे अन्तरतम में बहती चली जायेंगी। तुम मुझे कितना याद रखोगी, यह मैं क्या जानूँ !

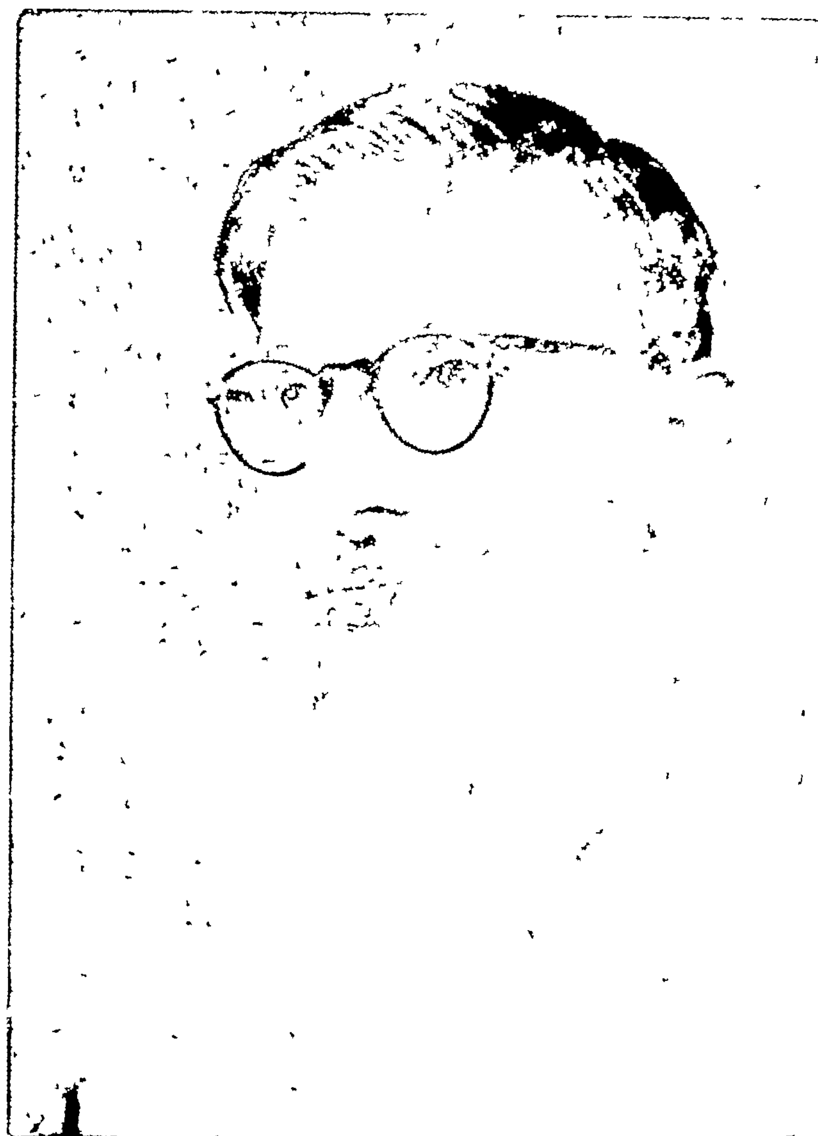
यदि मैं अर्द्धनिशा के नक्षत्र की तरह, अनन्त प्रेम-ज्योति में झिलमिलाता हुआ, सहसा ही टूट कर क्षितिज के पार ओझल हो गया तो यह 'हिमाचला' तुम्हें मेरी याद दिलाती रहे।

स्नेह-छाया में,
रामेश्वर

अपने प्रिय पाठकों को प्रकाशन इस बार 'प्रथम किरण' के प्रकृति-प्राण कवि श्री रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की 'हिमाचला' भेंट कर रहा है। 'हिमाचला' में कवि-हृदय की मर्म-स्पर्शी कविताएँ हैं। इन कविताओं में ठण्डी आग है। इन आनन्द-भरी कविताओं का संग्रह आपके समक्ष उपस्थित करते हुए प्रकाशन को अतीव हर्ष है।

'हिमाचला' का प्रकाशन बाह्य सज्जा और आन्तरिक सौन्दर्य से किया गया है। सुन्दर छपाई, बढ़िया कागज, सजिल्द आकर्षक मुखपृष्ठ, सभी कुछ इस कठिन समय में प्रकाशन ने आपको देने का यत्न किया है। आशा है, 'हिमाचला' से आपको जीवन मिलेगा तथा आप 'तरुण' जी की अन्य रचनाओं की प्रतीक्षा करेंगे।

प्रकाशक



कवि

आभास

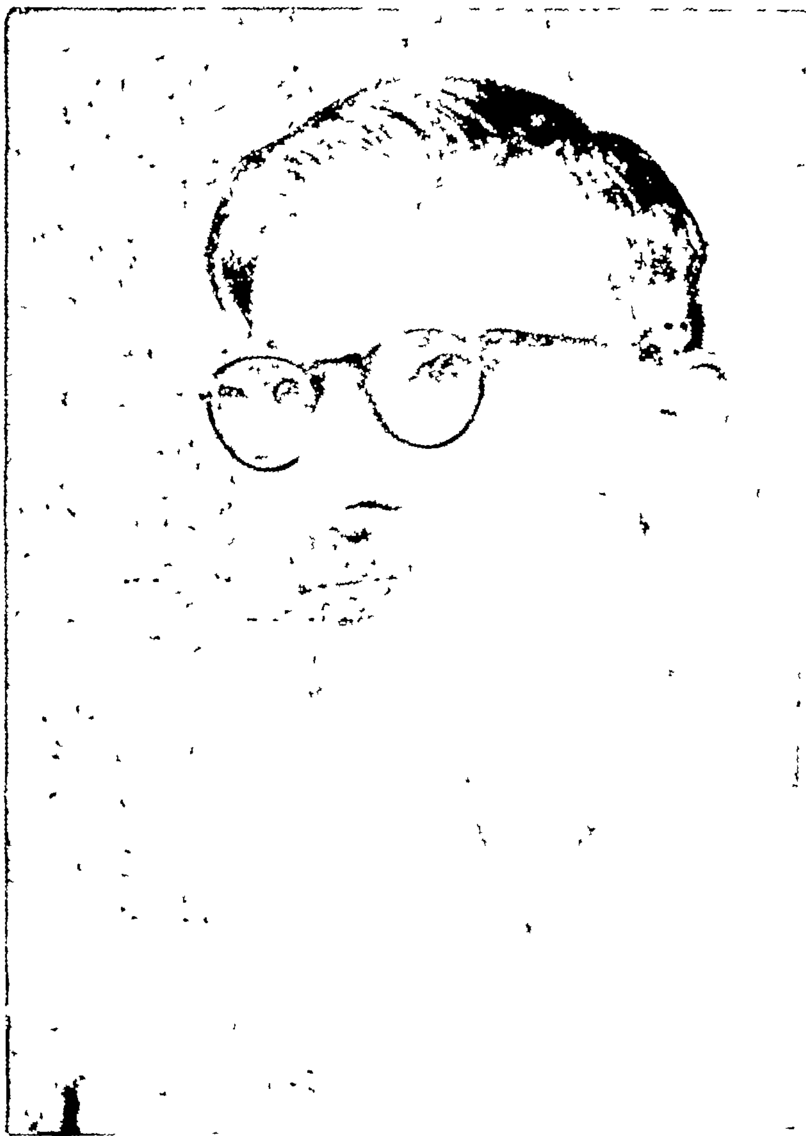
'प्रथम किरण' के बाद 'हिमाचला' आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है। पिछले तीन वर्षों में लिखी गई कविताओं में से कुछ चुनी हुई कविताएँ ही इसमें संकलित हैं। प्रकृति, प्रेम, और सौन्दर्य-सम्बन्धी मेरी नवीन कविताएँ आगामी दो संग्रहों— 'प्रणय-वल्लरी' तथा 'नीलाम्बरा'— में शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेंगी, ऐसा विश्वास है।

'हिमाचला' का रचना-काल मेरे जीवन की बहुमुखी और मार्मिक अनुभूतियों का काल है इसीलिये इसमें मेरी प्रकाश-चेतना, आत्मोल्लास, प्राणोष्मा, सौन्दर्य-स्वप्न, पुलक-कम्प, रोमाञ्च-स्तम्भ, और अश्रु-उच्छ्वास आदि सभी का जीवन-सुलभ सतरंगी वैभव विद्यमान है। मेरे हृदय की समस्त सत्ता की अभिव्यक्ति होने के कारण 'हिमाचला' की रचना से मुझे बहुत सन्तोष है। विधाता की सृष्टि में जो कुछ त्रुटियाँ व अभाव हैं, उन्हें मैंने 'हिमाचला' में पूरा कर लेने का प्रयत्न किया है।

विज्ञान के इस युग में जहाँ चारों ओर कविता के प्रति आज आस्था कम होती जा रही है, वहाँ मुझे लगता है कि दरिद्र और बुद्धि-पंगु मानव के हृदय को स्वस्थ, स्निग्ध, प्रसन्न, स्वच्छ और आलोकपूर्ण करने के लिए कविता को ही आज मानव-जीवन की स्वर्गीय सन्देश-वाहिका बनना है। विज्ञान-राजनीति-जर्जर इस विश्व को कविता ही चन्द्रिका-चर्चित वंशी-स्वर-लहरी-पुलकित हरी-भरी शैल-तटी में परिणत कर सकेगी, विश्वास था यह गहन-आत्मिक स्वर अनमोल कोकिल-बोल की तरह अनायास [illegible] आज मेरे अन्तरतम से फूट रहा है।

बस, रुको! मेरे हृदय से मौन [illegible]। प्रकृति के [illegible] सौन्दर्य-सम्बन्धी कविताओं के अपने आगामी संग्रह 'नीलाम्बरा' में, यदि आवश्यकता जान पड़ा तो, कुछ और लिखूँगा। [illegible]

'प्रथम किरण' को अपने पाठकों का जैसा और जितना प्यार मिला है, वैसा ही यदि [illegible] को [illegible]



कवि

आभार

'प्रथम किरण' के बाद 'हिमाचला' आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है। पिछले तीन वर्षों में लिखी गई कविताओं में से कुछ चुनी हुई कविताएँ ही इसमें संकलित हैं। प्रकृति, प्रेम, और सौन्दर्य-सम्बन्धी मेरी नवीन कविताएँ आगामी दो संग्रहों— 'प्रणय-वल्लरी' तथा 'नीलाम्बरा'— में शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेंगी, ऐसा विश्वास है।

'हिमाचला' का रचना-काल मेरे जीवन की बहुमुखी और मार्मिक अनुभूतियों का काल है, इसीलिये इसमें मेरी प्रकाश-चेतना, आत्मोल्लास, प्राणोष्मा, सौन्दर्य-स्वप्न, पुलक-कम्प, रोमाञ्च-स्तम्भ, और अश्रु-उच्छ्वास आदि सभी का जीवन-सुलभ सतरंगी वैभव विद्यमान है। मेरे हृदय की समस्त सत्ता की अभिव्यक्ति होने के कारण 'हिमाचला' की रचना से मुझे बहुत सन्तोष है। विधाता की सृष्टि में जो कुछ त्रुटियाँ व अभाव हैं, उन्हें मैंने 'हिमाचला' में पूरा कर लेने का प्रयत्न किया है।

विज्ञान के इस युग में जहाँ चारों ओर कविता के प्रति आज आस्था कम होती जा रही है, वहाँ मुझे लगता है कि दरिद्र और बुद्धि-पंगु मानव के हृदय को स्वस्थ, स्निग्ध, प्रसन्न, स्वच्छ और आलोकपूर्ण रखने के लिए कविता को ही आज मानव-जीवन की स्वर्गीय सन्देश-वाहिका बनना है। विज्ञान-राजनीति-जर्जर इस विश्व को कविता ही चन्द्रिकालोकित वंशी-स्वर-लहरी-पुलकित हरी-भरी शैल-तटी में परिणत कर सकेगी; विश्वास का यह गहन-आत्मिक स्वर अनमोल कोकिल-बोल की तरह अखण्ड निष्ठा बनकर आज मेरे अन्तरतम से फूट रहा है।

बस, रुकूँ! भरे हृदय से मौन अच्छा। प्रकृति के विपुल-विराट् ऐश्वर्य-सम्बन्धी कविताओं के अपने आगामी संग्रह 'नीलाम्बरा' में, यदि आवश्यकता जान पड़ी तो, कुछ और लिखूँगा। अभी इतना ही बहुत।

'प्रथम किरण' को अपने पाठकों का जैसा और जितना प्यार मिला है, वैसा ही यदि 'हिमाचला' को मिल सका तो मैं अपना अस्तित्व सफल मानूँगा।

मेरठ
१८-२-५२
(अरुणोदय की वेला)

विनयावनत,
'तरुण'

क्रम

रचना		पृष्ठ

	रचना	पृष्ठ
५३	मुक्ति	७३
५४	जीवन : मुक्ति या बन्धन	७४
५५	कौन	७५
५६	निर्जन तट	७६
५७	गेदा के फूल	७८
५८	सरसों फूली	७९
५९	खेत की ओर	८०
६०	पूनो का चाँद	८१
६१	ग्राम-वधू	८५
६२	माटी के घर	८७
६३	चिड़ियाँ	९०
६४	ग्राम-विरहिणी दीप जलाती	९३
६५	शिशु को चाँद दिखाती माता	९४
६६	चमक रहे अम्बर में तारे	९५
६७	कितनी मधुर वह रात थी	९६
६८	वे सुन्दर से दिन बीत गये	९७
६९	वह कथा सुन क्या करोगे	९८
७०	बीती बातें मत याद दिला	९९
७१	मोती का सा मन टूट गया	१००
७२	इस पीड़ा का उपचार न कर	१०१
७३	दूर गगन में टूटा तारा	१०२
७४	लो, निशा अब जा रही है	१०३



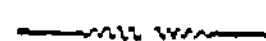
नव चेतना

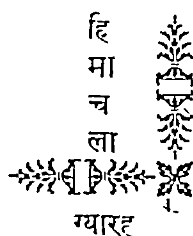
मन भर गया भव्य भावों से, जाग उठी रमणीय कल्पना,
मुग्ध नयन में समा गया रे, अमर ज्योति का स्वर्गिक सपना!
अहा, हृदय की कुसुमित डाली मधुमय नूतन नीड़ हो गई,
जिसमें कोमल-कुलकुलकारी विहगिनियों की भीड़ हो गई!

प्राणों में उल्लास भर गया, सृष्टि हो गई सुन्दर सहसा,
जीवन लहरा उठा— धूप में लहराते नीले सागर-सा!
चरणों में गति आई चंचल ले पावन विश्वास सजीले,
बरसाती झरनों-से मन में फूटे आते गीत सुरीले।

चहक उठी आशा पुलकाकुल, झंकृत जीवन-तार हो गया,
सतरंगी अभिलाषाओं का इन्द्र-धनुष-विस्तार हो गया।
नई ज्योति सी जगी नयन में स्नेह-प्राप्त आलोक-शिखा-सी,
स्वाति-बिन्दु सा आज, पा गई हृदय-चातकी युग-युग प्यासी!

मधुमय वासन्ती वैभव से लदा हुआ-सा पुलक रहा मन—
ऊषा-रंजित, विहग-निगुञ्जित मलयज-पुलकित ज्यों कदंब-वन!
धन्य, शक्ति मंगल भावों की! आज न कोई रहा क्लेश है,
मन, बोलो इतना पाकर भी अब क्या पाना और शेष है?





बटोही, ठंडी साँस न ले !

बटोही, ठंडी साँस न ले !
कँटीले पथ पर बढ़ता जा, पाँव सब छिल ही जायँ, भले !
बटोही, ठंडी साँस न ले !

झेलते आँधी, वर्षा, घाम—
निरन्तर बढ़ना तेरा काम !
मिले या मिले नहीं विश्राम, पेड़ की शीतल छाँह तले !
बटोही, ठंडी साँस न ले !

आग में जल प्यारे, कुछ और !
राख मत बन, कंचन की ठौर !
परीक्षा तब होगी पूरी, खरा कंचन होकर निकले !
बटोही, ठंडी साँस न ले !

रह गई मंजिल तेरी पास,
अरे, अब मत ले गहरे साँस,
टिकाये रख अपना विश्वास, अरे ओ हिम्मत के पुतले !
बटोही, ठंडी साँस न ले !

लक्ष्य जब रहता थोड़ी दूर—
तभी दुख आते हैं भरपूर !
अँधेरा बढ़ ही जाता है, सूर्य उगने से कुछ पहले !
बटोही, ठंडी साँस न ले !

———

नव चेतना

मन भर गया भव्य भावों से, जाग उठी रमणीय कल्पना,
मुग्ध नयन में समा गया है, अमर ज्योति का स्वर्गिक सपना!
अहा, हृदय की कुसुमित डाली मधुमय नूतन नीड़ हो गई,
जिसमें कोमल-कुलकुलकारी विहगिनियों की भीड़ हो गई!

प्राणों में उल्लास भर गया, सृष्टि हो गई सुन्दर सहसा,
जीवन लहरा उठा— धूप में लहराते नीले सागर-सा!
चरणों में गति आई चंचल ले पावन विश्वास सजीले,
बरसाती झरनों-से मन में फूटे आते गीत सुरीले।

चहक उठी आशा पुलकाकुल, झंकृत जीवन-तार हो गया,
सतरंगी अभिलाषाओं का इन्द्र-धनुष-विस्तार हो गया।
नई ज्योति सी जगी नयन में स्नेह-प्राप्त आलोक-शिखा-सी,
स्वाति-बिन्दु सा आज पा गई हृदय-चातकी युग-युग प्यासी!

मधुमय वासन्ती वैभव से लदा हुआ-सा पुलक रहा मन—
ऊषा-रंजित, विहग-निगुंजित मलयज-पुलकित ज्यों कदंब-वन!
धन्य, शक्ति मंगल भावों की। आज न कोई रहा क्लेश है,
मन, बोलो इतना पाकर भी अब क्या पाना और शेष है?

बटोही, ठंडी साँस न ले !

बटोही, ठडी साँस न ले ।
कँटीले पथ पर बढता जा, पाँव सब छिल ही जायँ, भले !
बटोही, ठडी साँस न ले ।

झेलते आँधी, वर्षा, घाम—
निरन्तर बढ़ना तेरा काम ।
मिले या मिले नही विश्राम, पेड़ की शीतल छाँह तले ।
बटोही, ठंडी साँस न ले ।

आग में जल प्यारे, कुछ और ।
राख मत बन, कचन की ठौर !
परीक्षा तब होगी पूरी, खरा कचन होकर निकले !
बटोही, ठंडी साँस न ले ।

रह गई मजिल तेरी पास,
अरे, अब मत ले गहरे साँस,
टिकाये रख अपना विश्वास, अरे ओ हिम्मत के पुतले ।
बटोही, ठडी साँस न ले !

लक्ष्य जब रहता थोड़ी दूर—
तभी दुख आते हैं भरपूर ।
अँधेरा बढ ही जाता है, सूर्य उगने से कुछ पहले !
बटोही, ठंडी साँस न ले ।



माँझी, साहस छोड़ न देना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !

सागर में तूफ़ान उठा है, नाव तुझे बस अपनी खेना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !

संयम रखना इन लहरों में,

कठिन परीक्षा के पहरों में !

सँभल सँभल कर डाँड़ लगाना, पर झुँझला कर तोड़ न देना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !

झंझा आवे, नौका डोले !

लहरें तेरे बल को तौलें !

मृत्यु तुझे आलिंगन में ले, पर प्यारे, मुख मोड़ न लेना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !

सागर में जितना चढ़ता जल—

नाविक में उतना बढ़ता बल !

कायरता है— इन लहरों से आगे बढ़कर होड़ न लेना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !

लौट न जाना हिम्मत-हारा !

दूर नहीं अब रहा किनारा !

या तो तर जा, या तू बन जा— जल-जीवों के लिए चबेना !

माँझी, साहस छोड़ न देना !



आश्वासन

अपना टूटा हृदय सँभालो,
असमय में आँसू मत ढालो,
और न ठंडी आह निकालो,
यह रोने का समय नहीं है।

तुम लपटों में बहुत जले हो,
काँटों पर दिन-रात पले हो,
अंगारों पर सदा चले हो,
सखे, तुम्हारी बात नहीं है।

पर तुम यों कह-कह मत रोओ,
दीर्घ साधना-फल मत खोओ,
अन्तिम बार लगादो, जो भी—
प्राण-शक्ति अब शेष रही है।

वह आया, वह आया। लो तट—
सधे-हाथ, हे जीवन-केवट।
डाँड लगाओ, भय मत खाओ।
यह क्रीडा है, प्रलय नहीं है।

— —

माँझी, साहस छोड़ न देना !

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] इन लहरों में
कठिन परीक्षा के पहरों में ।
सँभल सँभल कर चोट लगाना, पर झुँझला कर तोड़ न देना !
माँझी, साहस छोड़ न देना ।

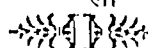
झंझा आवे, नौका डोले ।
लहरें तेरे बल को तोलें ।
मृत्यु तुझे आलिंगन में ले, पर प्यारे, मन मोड़ न लेना ।
माँझी, साहस छोड़ न देना ।

सागर में जितना चढ़ता जल—
नाविक में उतना बढ़ता बल !
कायरता है— इन लहरों से आगे बढ़कर होड़ न लेना ।
माँझी, साहस छोड़ न देना ।

लौट न जाना हिम्मत-हारा ।
दूर नहीं अब रहा किनारा ।
या तो तन जा, या तू बन जा— जल-जीवों के लिए चबेना ।
माँझी, साहस छोड़ न देना ।

—:—





आश्वासन

अपना टूटा हृदय सँभालो,
असमय में आँसू मत ढालो,
और न ठंडी आह निकालो,
यह रोने का समय नहीं है।

तुम लपटों में बहुत जले हो,
काँटों पर दिन-रात पले हो,
अंगारों पर सदा चले हो,
सखे, तुम्हारी बात सही है।

पर तुम यों कह-कह मत रोओ,
दीर्घ साधना-फल मत खोओ,
अन्तिम बार लगादो, जो भी—
प्राण-शक्ति अब शेष रही है।

वह आया, वह आया। लो तट—
सधे-हाथ, हे जीवन-केवट!
डाँड लगाओ, भय मत खाओ।
यह क्रीड़ा है, प्रलय नहीं है।

— —

नया जीवन– नया समाज

मत करो व्यर्थ गुण-गान स्वर्ग के देवों का,
उस कामधेनु का, कल्प-वृक्ष के मेवों का,
मत व्यर्थ विलासी देवों के गुण गा-गा कर–
तुम मान घटाओ, मानव । मानव जीवन का,
होंगे तो होंगे देव— अतुल धन-बल-सागर,
पर, मानव अपनी दुर्बलता में भी सुन्दर ।

जीवन की उस काल्पनिक मुक्ति का नाम न लो,
इस सरल मधुर जीवन-पथ पर तुम बढ़े चलो !
इन काँटों में ही कली खिलेगी, देखो तो ।
भव-बन्धन में ही मुक्ति मिलेगी, देखो तो ।
मन में आशा, तन में पौरुष का वास रहे !
मानव का मानव-गौरव में विश्वास रहे ।

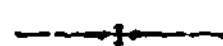
मानव को विकसित होने दो तुम रह स्वतन्त्र,
जीवन को निर्मल होने दो तुम वह स्वतन्त्र,
जो बनता है उसको बनने दो रह स्वतन्त्र,
जो जीर्ण हुआ उसको ढहने दो रह स्वतन्त्र,
बहने दो जग-जीवन की स्वाभाविक धारा ।
जीवन का जल निर्मल हो जाने दो सारा !

इन संघर्षों से मत घबराओ, हे मानव,
इन द्वन्द्वों में ही जीवन का अमृत सम्भव,
कब अन्धकार के बिना ज्योति की सुन्दरता ?
तत्वों के संघर्षण से ही सुर-धनु तनता ।
है तम-प्रकाश-विग्रह— अरुणोदय प्रभावन्त,
है शीत-ताप के संघर्षण में ही वसन्त ।

जग मे जो कुछ संघर्ष चल रहा है भारी—
यह तो मानव की क्रीड़ा है क्रीडा सारी !
धरती माता के ऑगन में सब शिशु मिलकर—
खेला ही करते हैं सारे दिन लड़-भिड कर !
इस ऑधी के आगे बरसेगा ही पानी।
सब हरी-भरी होगी यह धरती कल्याणी।

मेरे मन में तो आज अटल विश्वास भरा—
ज्वाला में जल कर मानव है हो रहा खरा।
यह विश्व में अन्त होगा सुन्दर हरा-भरा,
मगल गायेगी युग-युग तक यह वसुन्धरा !
धरती का सुन्दर जोड़ा यह प्रिय नारी-नर—
कर देगा मानव-सृष्टि सफल, सयत, सुन्दर।

हे मानव ! अपना यह जग है आनन्द-धाम,
यह चिर मंगल उद्देश्यमयी रचना ललाम,
यह प्रभु की सार्थक सृष्टि, न इसका मान घटा,
यह सृष्टि सफल हो— तू भी अपना हाथ बँटा।
यह मर्त्य जगत् यदि हो जावे मधुमय सरोज—
तो किसी स्वर्ग की नहीं रहेगी तुझे खोज।



निर्माण

निर्माण कर, निर्माण कर ।

जीवन, घड़ी निर्माण की,
आदान और प्रदान की,
पावन मनोहर वेदिका—
यह त्याग की बलिदान की ।
इस पुण्य पथ पर बढ़ अभय,
अपने विसर्जित प्राण कर ।
निर्माण कर, निर्माण कर !

निज अस्थि मज्जा मांस की
ले ईंट चूना कंकड़ी—
रच भव्य जीवन की पुनः
अट्टालिका अपनी बड़ी ।
प्रासाद बन सकता अभी
उजड़ा हुआ यह खण्डहर !
निर्माण कर, निर्माण कर !

कितने सुघड़ तव हस्त ये।
दृग में मधुर सपने नये।
तुझ में अमर प्रतिभा भरी—
कञ्चन बने— जो कुछ छुए !
मत बैठ नभ में ताकता—
निज हाथ पर यों हाथ धर।
निर्माण कर, निर्माण कर !

अपने घरौंदे तू बना !
तट है बड़ा, रेता घना !
संसार भी तो देख ले—
रमणीय तेरी कल्पना ।
निर्माण का आनन्द ले—
क्या है, अगर आवे लहर !
निर्माण कर, निर्माण कर ।





अमर विश्वास

यदि अस्त सूरज हो गया–
मेरा नहीं कुछ खो गया !
पथ-ज्योति देने को अभी–
तारे निकलने शेष हैं !
विश्वास है मन में अमर !

यदि मेघ नभ में आ गये,
सब तारकों पर छा गये,
तो, ज्योति देने को अभी–
जुगनू चमकने शेष हैं !
विश्वास है मन में अमर ।

चमके न जुगनू भी कहीं,
मेरे रुकेंगे पग नहीं !
इस लौह-छाती में अभी,
साहस भरा भरपूर है ।
विश्वास है मन में अमर ।

है ही अँधेरा क्या क्षणिक ।
मेरा नयन-अंजन तनिक !
हो जाय तम घनघोर यदि–
तो भोर फिर क्या दूर है !
विश्वास है मन में अमर !



हि
मा

जो हो गया सो हो गया,
जो खो गया सो खो गया,
जो खोट थी सो जल गई,
जो शेष है वह स्वर्ण है।
विश्वास है मन में अमर।

मेरे हृदय, हिम्मत रखो।
जो साहसी सर्वस्व खो—
रज में रजत-कण ढूँढता—
मानव वही सम्पूर्ण है!
विश्वास रख मन में अमर!

गाता चल तू गीत !

गाता चल तू गीत—
माँझी, गाता चल तू गीत !

नदी अपार चढ़ी बरसाती,
लहरें, फेन उगलतीं आती !
झंझा भी विपरीत, और है धारा भी विपरीत !
माँझी, धारा भी विपरीत ! गाता चल०

जल ही जल है, जल ही जल है !
तुझ में भी तो अक्षय बल है !
कस कर डाँड लगाता जा तू, तेरी होगी जीत !
माँझी, तेरी होगी जीत ! गाता चल०

अन्धकार घिरता आता है,
पल-पल जल बढ़ता जाता है !
साहस के अवतार ! अरे तू क्यों होता भयभीत !
माँझी, क्यों होता भयभीत ! गाता चल०

तुझमें उठती देख जवानी—
नदी हो रही पानी-पानी !
चेतन के आगे जड़ काँपे, यही सनातन रीत !
माँझी, यही सनातन रीत ! गाता चल०

जवानी आ गई मेरी !

जवानी आ गई मेरी ।

न बन्धन मानता हूँ मैं,
न रुकना जानता हूँ मैं,
कि सीमा तोड़ पिञ्जर की करूँगा व्योम की फेरी ।
जवानी आ गई मेरी ।

अँधेरा चीरती काला—
जगी, मन में नई ज्वाला ।
बुझी यह आग तो समझो— हुआ मैं राख की ढेरी ।
जवानी आ गई मेरी !

धधकती आग का पथ है,
भयकर आँधियाँ, रथ है !
चरण में क्रांतियाँ नाचे, बनी है साँस रण-भेरी !
जवानी आ गई मेरी !

चुनूँगा पंथ मैं अपने,
बुनूँगा स्वर्ण के सपने !
नए आदर्श हैं मेरे, व्यवस्थाएँ नई मेरी !
जवानी आ गई मेरी !

नया बल है, नई पाँखें !
नई प्रतिभा, नई आँखें !
दिशाएँ मुक्त हैं सारी, सफलता पाँव की चेरी !
जवानी आ गई मेरी !

मुझे नित दौड़ते रहना,
बिजलियों सा चमक, बहना,
नहीं अवकाश रुकने का, कहीं हो जायगी देरी ।
जवानी आ गई मेरी ।

उद्‌बोधन

जागरण का शंख गूँजा, जाग जा रे आत्मघाती !
दिव्य जीवन की सुवेला यह न बारम्बार आती !
ज्योति का मधु-स्रोत फूटा, मिट गया सारा अँधेरा—
स्वर्ण-सी यह लालिमा, रे क्या नहीं तुझको सुहाती ?
यह मधुर आलोक फूटा ! ब्रह्म का सब तेज फूटा !
चह्चहाते पक्षियों की टोलियाँ तुझको जगाती !
जग गया कण-कण प्रकृति का, तू अभी तक सो रहा रे,
क्यों पड़ी है ज्योति-वञ्चित, आह, तेरी दीप-बाती !
देख, दल नर-नारियों का जा रहा बलिदान पथ पर—
क्या न तेरे कान उनके पाँव की पद-चाप आती ?
जाग जा जड़, जाग जा जड़, जाग जा रे, जाग जा रे—
दिव्य अमृतवर्षिणी सुन जागरण की नव प्रभाती !
ए अभागे, हाय तू बिन मौत मरना चाहता क्यों,
याद रखना मृत्यु अपनी बेर से पहले न आती !



दि

नव शक्ति

मुझ नश्वर में कुछ जगी अनश्वर शक्ति आज !
मन में कण-कण के लिए जगी अनुरक्ति आज !
जिसके चरणों पर मैं न चढ़ा दूँ अपने को—
है कौन जगत में बोलो ऐसा व्यक्ति आज ?
मुझ नश्वर में कुछ जगी अनश्वर शक्ति आज !

अब तक मेरे प्राणों में जो बनकर पीड़ा—
कसका करती थी रह रह, कर निष्ठुर क्रीड़ा,
वह मेरे स्वर से फूट पहाड़ी झरने-सी—
हो रही हृदय की पावनतम अभिव्यक्ति आज !
मुझ नश्वर में कुछ जगी अनश्वर शक्ति आज !

अब तक मन में जो छिपी रही वासना बनी—
हो रही गीत के गठ-बन्धन से शक्ति आज !
जिसने मुझ को पीड़ा देकर चैतन्य किया—
उसके प्रति जागी रोम-रोम से भक्ति आज !
मुझ नश्वर में कुछ जगी अनश्वर शक्ति आज !

जो भी मुझको देता ला कर विष की प्याली—
ओठों तक आते-आते हो जाती लाली !
अधमुँदे नयन में लेता ज्योंही शीष झुका—
दिख पड़ती उसमें शिव की मंगलमूर्त्ति आज !
मुझ नश्वर में कुछ जगी अनश्वर शक्ति आज !

अन्तर्ज्वाल

वह मन क्या है, मरघट है ! जिसमें प्यार न हो,
वे हाथ अपावन, जिनमें प्रेमोपहार न हो,
वह क्या प्रेमी, जो प्रेम-पथ बाधा से डर–
प्राणों की भेंट चढ़ाने को तैयार न हो,
वह क्या जीवन, जिसमें चोटों की ताल न हो !
वह जीवन, मिट्टी ! जिसमें उठती ज्वाल न हो !

वह क्या गायक ! असफल हो वीणा तोड़ न दे,
वह क्या वाणी ! जो टूटे दिल को जोड़ न दे,
वह क्या माँझी, जो अपनी टूटी तरणी को–
तूफानों की हँसती लहरों पर छोड़ न दे,
वह पथ ही क्या, जिसमें काँटों का जाल न हो !
वह क्या योद्धा ! जो कट कर माँ का लाल न हो !

पंछी ! पिंजरे के तोड़ द्वार !

पछी, पिजरे के तोड़ द्वार !

तेरी पाँखों मे नूतन बल,
कंठों में कोमल गीत तरल,
तू कैसे हाय, हुआ बन्दी, वन-वन के कोमल कलाकार !
पछी, पिजरे के तोड द्वार !

क्या भूल गया वह हरियाली ?
अरुणोदय की कोमल लाली,
मनमाना फुर्-फुर् उड़ जाना नीले अम्बर के आर-पार !
पछी, पिंजरे के तोड द्वार !

क्या भूल गया बन्दी होके–
सुकुमार समीरण के झोंके–
जिनसे होकर तू पुलकाकुल बरसा देता था स्वर हजार !
पछी, पिंजरे के तोड़ द्वार !

रे, स्वर्ण-सदन में बदी बन–
यह दूध भात का मृदु भोजन !
तुझको कैसे भा जाता है, तज कर कुञ्जों का फलाहार !
पछी, पिजरे के तोड़ द्वार !

तू मुक्त अभी हो सकता है !
अरुणाचल में खो सकता है !
झटका देकर के तोड़ उडे पिजरे को कर यदि तार-तार !
पछी, पिंजरे के तोड़ द्वार !





लौह पुरुष, तू रोता क्यों है !

लौह पुरुष ! तू रोता क्यों है !
नयनों के ये हीरे-मोती, यों मिट्टी में खोता क्यों है !
लौह पुरुष ! तू रोता क्यों है !

तेरी ही भौंहों के इंगित—
बिजली बन होते प्रतिबिंबित,
पर्वत को ठुकराने वाले ! भार व्यथा का ढोता क्यों है !
लौह पुरुष ! तू रोता क्यों है !

मुक्त पडे पथ सारे तेरे,
धरती, सिन्धु, सितारे तेरे,
धरती फाड़, समुद्रों को मथ ! दास किसी का होता क्यों है !
लौह पुरुष ! तू रोता क्यों है !

देख, हो रहा सुन्दर तड़का,
उड़, अपनी पाँखों को फड़का,
दीन नयन से देख रहा तू बन पिंजरे का तोता क्यों है !
लौह पुरुष ! तू रोता क्यों है !



यों काम नहीं चलता जग में !

यों काम नहीं चलता जग मे।

ज्यों ही पग-तल मे शूल लगा—
बस, बीते सुख की याद जगा—
छालों को सहलाते रहना— आँसू टपका-टपका मग मे!
यों काम नहीं चलता जग मे!

बाधक चट्टानें चूर न की,
पथ की झाड़ी भी दूर न की,
ये अग चुभाती रहें सदा, वे बाधक हों दिन-रात हमें!
यों काम नहीं चलता जग मे।

जीवन तो है यह, भीषण रण,
सघर्ष प्रगति, विश्राम मरण,
लेकर के नित जीते रहना कोरी भावुकता रग-रग में—
यों काम नहीं चलता जग में!

वह भँवरा कब गा सकता है,
जीवन-रस क्या पा सकता है—
जो नीरव होकर बैठ गया फूलों का मधु लिपटा पग में!
यों काम नहीं चलता जग में।



ओ, चट्टान-से मल्लाह !

ओ, चट्टान-से मल्लाह !

तू रे, जा रहा किस ओर ?
बादल छा रहे घनघोर,
लहरों में भयंकर रोर,
जल का है न कोई छोर,
भूखे तैरते हैं ग्राह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

तू है जा रहा किस ओर ?
छूने सिन्धु-पथ का छोर,
आँखें लाल, उन्नत भाल,
उत्तेजित नसों का जाल,
मन में कौन अन्तर्दाह ?
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

तुझ में कौन सी है आग ?
कैसी लग गई है लाग ?
बढ़ता जा रहा अविराम—
सहता शीत, वर्षा, घाम,
दुर्बल अंग, सुदृढ़ बाँह !
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

लहरें हैं बहुत उत्ताल,
नभ का फूटता है भाल,
जर्जर, पोत के हैं पाल,
फैला, अन्धकार विशाल,
कितनी है भयंकर राह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

पथ में वज्र सी चट्टान,
आगे जा न, कहना मान।
फैला सिन्धु आह, अनन्त !
बाड़व रोक देगा पथ।
रे, हो जायगा तू स्याह !
ओ, चट्टान-से मल्लाह।

सम्मुख, आँधियों को देख,
काली रात्रियों को देख,
कैसे हैं भँवर विकराल—
नगा नाचता है काल,
तुझको क्यों मरण की चाह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

तुझको देखने, हे वीर !
उमड़ा सिन्धु का सब नीर,
तेरा देख साहस-कोष—
फैला आँधियों में रोष,
तुझसे सिन्धु को भी डाह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

बन कर मृत्यु का मुख-ग्राम—
तेरी नाव करती रास,
लेकिन ओट पर मृदु हास,
मन में है अमर विश्वास,
मरने की न कुछ परवाह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

जल के बीच लगर डाल—
ले विश्राम तो, कुछ काल,
ठहरा जीर्ण अपनी नाव—
अपने देख तो ले घाव,
कैसे अग जर्जर आह,
ओ, चट्टान से मल्लाह !

ऐसा कौन सा आलोक—
तू रे, पा रहा गत-शोक !
पल-पल दे रही है ज्योति—
मन को शक्ति का मधुस्रोत—
प्राणों को अमर उत्साह,
ओ, चट्टान-से मल्लाह !

———◆———

उपचार

रोने से तो दुख दूर नहीं होने का,
आँसू से पत्थर चूर नहीं होने का,
जीवन भर चाहे तुम कुंकुम से पूजो—
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का।

ठंडी आहों से नहीं फूटते छाले,
जलते आँसू से नहीं टूटते ताले,
फूँकों से उड़तीं नहीं विकट चट्टानें,
ढीली पलकों से नहीं छूटते जाले।

जो तुमने कोमल करुण रागिनी छेड़ी,
क्या तोड़ सकी वह बोलो, पग की बेड़ी?
बस, काट सकेगी उसे हथौड़ा-छैनी—
सपनों-सी कोमल नहीं, लपट सी पैनी।

आओ, कंटक सब दूर करें हम पथ के—
बाधक, जीवन के महादिग्विजय-रथ के,
जो पग के चारों ओर घिरे हों बन्धन—
क्या रहें छिटकते उन पर अक्षत-चन्दन?



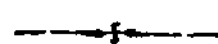
गीत-भरा हो मेरा जीवन !

गीत-भरा हो मेरा जीवन !

मेरा जीवन हो वह तरु नव—
जिस पर लाल लदे हों पल्लव,
स्वर्ण-उषा की मृदु आभा में—
हिलते हों जो नीरव-नीरव,
रंग-बिरंगी चिड़ियाँ जिनमें करती हों कोमल कल कूजन !
गीत-भरा हो मेरा जीवन !

मेरा जीवन हो वह निर्झर—
फोड़ चला हो जो गिरि-अन्तर,
उजले नील गगन के नीचे—
बहता जो स्वच्छन्द निरन्तर,
सागर-संगम के हित पथ के तोड़ चला जो कृत्रिम बन्धन !
गीत-भरा हो मेरा जीवन !

मेरी उर्मिल जीवन-धारा—
गुञ्जारित करदे जग सारा,
हरियाली से भर-भर दे वह
मेरे मन का कूल-किनारा,
पथ के कंकड़-पत्थर सारे, हो जायें गायन के साधन !
गीत-भरा हो मेरा जीवन !





जवानी है, जवानी है !

उमगे ले हृदय मे सो—
चलीं लहरे किनारे को,
मिटीं चट्टान से टकरा—
न था कुछ भी सहारे को ।
कहाँ बेडौल चट्टाने ! कहाँ सुकुमार पानी है !
जवानी है, जवानी है ।

विहगम नीड से उड कर—
चला विश्वास मन मे भर—
कि मै विपरीत आँधी के—
उड़ूँगा आज हिम्मत कर,
घटाओं मे उडा जाता, नही मिलती निशानी है ।
जवानी है, जवानी है ।

खडे पर्वत बडे ऊँचे,
बटोही जा रहा गाता,
कुचलता झाडियाँ पग से,
चढाई देख मुसकाता,
फटे है पॉव, कधे पर पड़ी कथा पुरानी है ।
जवानी है, जवानी है !

जाग, मेरे जीवन की आग !

जाग, मेरे जीवन की आग !
जला दे मेरे मन का दीप, सुना कर अपना दीपक राग !
जाग, मेरे जीवन की आग !

हृदय की जडता मिटे अनन्त,
चार दिन मुझको मिले वसन्त,
बहे रग-रग मे स्वर्णिम रक्त— लिए बिजली, चिनगारी, झाग !
जाग, मेरे जीवन की आग !

लिए कोमल कण्ठों मे गीत—
चलूँ कुछ धारा के विपरीत,
शक्तियाँ परखूँ अपनी आज, नाथ कर विषमय काला नाग !
जाग, मेरे जीवन की आग !

क्रांति के खेलूँ सुन्दर खेल,
शीत, वर्षा, हिम, पाला झेल,
पर्व है नव यौवन का आज, खेल लूँ मैं भी अपनी फाग !
जाग, मेरे जीवन की आग !

शून्य, मेरे जीवन की डाल—
लदे नूतन पल्लव से लाल,
प्रेम की उडे अबीर-गुलाल, भावना गावे अमर विहाग !
जाग मेरे जीवन की आग !

माँग में भर कर तू भरपूर—
अरुण निज लपटों का सिन्दूर,
अभागिन मेरे मन की दीन व्यथा को दे दे अमर सुहाग !
जाग, मेरे जीवन की आग !

———

 हि

प्रेरणे, आओ हृदय में !

प्रेरणे, आओ हृदय में ।

क्यों विमुख हो देवि ! मुझसे, मै तुम्हारा चिर उपासक,
चरण-तल की धूलि में मै खेलता अनजान बालक,
दो तरंगों की उमंगे, दो नया आलोक मुझको,
दो अलौकिक भाव-वैभव, दो सरल नव श्लोक मुझको,
सीख लूँ मैं छन्द तुमसे, बैठ कर गाओ हृदय मे !
प्रेरणे, आओ हृदय मे !

आँधियों-सी उठ तनिक, सोया हृदय झकझोर जाओ,
कुछ नई पीडा उठाओ, कुछ नई ज्वाला जगाओ,
मधुर मधु की बूँद दो तुम, अश्रु दो तुम, आग दो तुम,
प्रेम की मुरली सुनाऊँ, वह अमर अनुराग दो तुम,
फूट निकलें गीत, ऐसी चोट उपजाओ हृदय में !
प्रेरणे, आओ हृदय में !

तुम उमड आओ हृदय में सिन्धु की हिल्लोल बन कर,
प्राण में मधु घोल जाओ मञ्जु कोकिल-बोल बन कर,
आज, आओ तुम हृदय की बेड़ियों को खोलती सी,
प्रथम वर्षा-सी अहा, आओ सुधा रस घोलती सी !
दूर करती सी अँधेरा देवि, मुसकाओ हृदय में !
प्रेरणे, आओ हृदय में ।

दिव्य वह रमणीय मेरी कल्पना जग जाय फिर से,
पूर्णिमा के सिन्धु-सा मन, शक्ति से लहराय फिर से,
और, जीवन के विटप के ये कँटीले ठूँठ सारे—
दहकते अगार-कुसुमों से अहा, लद जायँ प्यारे,
मैं बहूँ स्वच्छन्द, जैसे आँधियाँ भीषण प्रलय में ।
प्रेरणे, आओ हृदय में ।

चाह

स्नेह चाहिए, न रत्न-दान चाहिए।
गेह चाहिए, नहीं विमान चाहिए!
कल्पवृक्ष चाहिए न. प्रीत दो मुझे,
कोटि ग्रन्थ चाहिए न, गीत दो मुझे!
अन्धकार की नहीं सहस्र रात दो।
एक ही, वसन्त का नया प्रभात दो।

प्यास है नहीं, अनन्त सात सिन्धु की,
आस एकमात्र कान्त स्वाति-बिन्दु की।
है न कामना— मिले अपार सम्पदा,
एक चाहिए हृदय, पराग से लदा,
सौ प्रभात दो न कोटि-कोटि रत्न दो,
स्वर्ग दो न, प्रेम का सुरम्य स्वप्न दो।



प्रेम

वह करेगा प्रीत, केवल वह करेगा प्रीत,
आग के पथ पर सुरीले गा सके जो गीत !
देह को अपनी, बनाले पंथ की जो खेह,
जीत में है हार जिसको, हार में ही जीत !
शूल को जो फूल कह दे, ज्वाल को जयमाल,
अश्रु को मोती, रुदन को जो कहे संगीत !
डूब कर मॅझधार में कह दे— 'हुआ मै पार'—
आँधियों में चल पडे जो, धार के विपरीत !
दाह दीपावलि जिसे है ; है मरण, त्यौहार,
घाम है चन्दन जिसे ; कपूर, भीषण शीत !
वह करेगा प्रीत, केवल वह करेगा प्रीत !



मनुहार

ओ मधुर पवन में खिलती सी
सुकुमार वसन्ती नव कलियों,
क्षण-भंगुर जीवन में मुझको
मादक मुसकान सिखादो न!

ओ मधुर चहचहाने वाले–
अरुणोदय वेला के विहगों,
तुम मुझको अपने जैसा ही–
निज जीवन-गान सिखादो न!

ओ भँवरों! मुझको, जीवन की–
इस काँटों वाली डाली में–
मँडरा-मँडरा कर, गुन् गुन् कर,
करना मधु-पान सिखादो न!

ओ तट की लहरों! तुम मुझको–
हर बार पराजित हो-हो कर–
लहरा-लहरा कर गाने की
निज सुन्दर बान सिखादो न!

ओ रजनी की अँधियारी में–
जलती सी दीप-शिखा! मुझको–
औरों के हित, निज जीवन का–
करना बलिदान सिखादो न!



हि

प्राण, तुम मेरे हृदय में !

प्राण, तुम मेरे हृदय में !

दूर चम्पक-कुञ्ज से उठ, स्निग्ध चन्दन-चाँदनी में—
मन्द-मन्थर-चाल-आती, मुग्ध-मञ्जुल रागिनी-सी—
गूँजती हो तुम, हृदय में !
प्राण, तुम मेरे हृदय में !

मृदु-सुमन-मधु-गन्ध-सुरभित, धीर-सुखकर-पवन-पुलकित,
कुन्द-उज्ज्वल चाँदनी-युत, नव वसन्ती यामिनी-सी—
छा रही हो तुम, हृदय में !
प्राण, तुम मेरे हृदय में !

प्राण की सम्पूर्ण आभा से प्रकाशित हो समुज्ज्वल,
मेघ-माला के हृदय को चीरती सौदामिनी-सी—
कौंधती हो तुम, हृदय में !
प्राण, तुम मेरे हृदय में !

ग्रीष्म-नीलम-व्योम नीचे, धवल हिमगिरि के चरण में—
मञ्जु कल्कल् नाद करती बह-रही मदाकिनी-सी—
गा रही हो तुम हृदय में !
प्राण, तुम मेरे हृदय में !

पा प्यार तुम्हारा ही, रानी !

परिचायक मृदु अन्तस्तल की—
साँसें चलती हल्की-हल्की,
सुकुमार उनींदा बहता ज्यों अरुणोदय में मृदु मलयानिल !
पा प्यार तुम्हारा ही, रानी !

हल्की-हल्की उर की धड़कन—
चलती रहती मेरी निशि-दिन,
ज्यों मधुर पवन से ज्योत्स्ना मे स्पन्दित रहती लहरें कोमल !
पा प्यार तुम्हारा ही, रानी !

संघर्ष बहुत, पर अधरों पर—
मेरे रहती मुसकान मधुर !
ज्यों वायु-विकल लहरें जल की बालारुण-किरणों से स्वर्णिल !
पा प्यार तुम्हारा ही, रानी !

निश्चिन्त विचरता मेरा मन—
अपने ही सुख में, मुक्त-चरण !
ज्यों शरद्-गगन में शशि-चुम्बित घन-खण्ड धवल, झीना, स्वप्निल !
पा प्यार तुम्हारा ही, रानी !

तुम मेरे साथी होते तो—

तुम मेरे साथी होते तो, जीवन नन्दन-वन हो जाता !

काँटे हो जाते मृदुल कुसुम,
पथ-धूल मुझे होती कुंकुम,
मोती होता दृग-नीर, पसीना शीतल चन्दन हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

मैं दीपक, तुम होते बाती,
सारी भव रजनी कट जाती !
दो प्राणों का संयोग मधुर, आलोक चिरन्तन हो जाता ।
तुम मेरे साथी होते तो—

पा साथ तुम्हें मैं, जीवन-धन ।
इस जग को कह देता उपवन !
तुमको पाकर जग का क्रन्दन अलियों का गुंजन हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

तुम चुम्बक हो, तुम हो पारस,
तुम खींच मुझे लेते बरबस !
सम्पर्क तुम्हारा पाकर मैं, लोहे से कंचन हो जाता ।
तुम मेरे साथी होते तो—

हम एक डाल पर रह लेते,
आँधी-पानी सब सह लेते !
खिल साथ, पहुँच कर पूजा में चुपचाप विसर्जन हो जाता ।
तुम मेरे साथी होते तो—

भव-लहरों पर क्रीड़ा होती,
डूबे तो मिल जाते मोती !
जग-जीवन, मान-सरोवर की लहरों का विचरण हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

तुमको पाकर, हे मधुर हृदय !
मुझको न मरण का होता भय !
दुख की रातों का अँधियारा नयनों का अंजन हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

जीवन होता संगीत महा,
धरती पर आता स्वर्ग बहा !
भव-तीर्थ तुम्हारे साथ नहा, यह जीवन पावन हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

यह जीवन का यमघाट विकट—
हँसते-गाते ही जाता कट।
भव का बन्धन— निज रूप बदल, अपना भुज-बन्धन हो जाता !
तुम मेरे साथी होते तो—

मुख-छवि

तुम्हारे मुखड़े में क्या है!

मद-भरे, उजले, रतनारे,
मीन-से चञ्चल, कजरारे,
सीप-से चौड़े, अनियारे—
नयन में रस लहराता है!
तुम्हारे मुखड़े में क्या है!

कमल-पँखुरी से पलक विशाल,
टमकते, बरौनियों के बाल—
कौंधते, ज्यों बिजली के जाल!
चमक कर मन रह जाता है!
तुम्हारे मुखड़े में क्या है!

सरल, दो भौंहें काली लोल,
सरस, कोमल रक्ताभ कपोल!
अरुण अधरों का अमृत-बोल—
खींच प्राणों को लाता है!
तुम्हारे मुखड़े में क्या है!

तुम्हारे मुख-मंडल का ध्यान—
हृदय में जब आता, हे प्राण—
तोड़ जीवन के नियम-विधान,
बहा सब कुछ ले जाता है!
तुम्हारे मुखड़े में क्या है!

स्मृति

आज तुम्हारी स्मृति नयनों मे तैर रही है।
हृदय सौम्य है, शात-स्वस्थ है इस क्षण मेरा—
वर्षा-वाली किसी निशा के बाद हुए निखरे प्रभात सा!
उस प्रभात सा— जब तरुओं का पत्ता-पत्ता धुला स्वस्थ सुथरा रहता है,
नील-रेशमी वायु स्वच्छ बहती रहती है—
शिशुओं के भोले विचार-सी!
उस प्रभात सा— जिसमें सारा व्योम निखर उठता मोती-सा,
विश्व दमक उठता हिमकण-सा,
और बिछल जाता सूर्य्यातप स्निग्ध-सुकोमल शात भाव से—
अधगीली सौंधी धरती पर, डाल-पात पर, जल-लहरो पर!
प्रकृति शात शालीन बनी-सी लगती मोहक
हँस-मुख एक सरल बाला-सी!
विहग चहक उठते डालों मे— नीलाम्बर में—
कमल-मुखी के पायल स्वर से।

× × ×

स्वच्छ नील उन्मुक्त गगन-तल
मौन अलस अपराह्न पहर में— दूर नगर से—
किसी विमल नीले जल वाली

वन-सरिता के निर्जन तट की
(और जहाँ से दीख रही हों स्वप्न लीन नीली पहाड़ियाँ)
सरसों और सौंफ की झरमर
सौंधी-सौंधी मधुर महकती हुई सलोनी–
जरीदार सम्पन्न खेतियों पर सम्मोहन,
निद्रित शिशु की सरल साँस-से बहते शिथिलित स्निग्ध पवन में,
स्वप्निल नीरवता में कोमलतम गति से लहलहा रही सी–
काली पीली हरी बैंगनी बुँदियों वाली–
मौन उनींदी अंगूरी सोसनी दूधिया नीली श्याम तितलियों के मृदु–
नील-हरित सुकुमार स्वप्न सी–
कोमल मादक शान्त मनोहर
आज तुम्हारी स्मृति नयनो में तैर रही है।



हृदय-समर्पण

है कठिन निस्पृह हृदय से प्रेम-पथ पर आत्म-विनिमय !
है कठिन अस्तित्व खो निज, अन्य मे व्यक्तित्व का लय।
प्राण का निश्छल समर्पण तो तुरत ही सृष्टि भर मे–
फैल जाता सूक्ष्म मन की भावना साकार बन कर।

प्रात से मिलती निशा जब, जब निशा से प्रात मिलता–
सृष्टि भर में इस मिलन का रूप ही नवजात खिलता !
व्यक्त होता दो हृदय का यह समर्पण उन क्षणों मे–
गूँजते अलि-युक्त-सरसिज-सा कनक भिनसार बन कर !

ग्रीष्म से जब शीत मिलता, शीत से जब ग्रीष्म मिलता–
सृष्टि भर में इस मिलन का रूप ही नवजात खिलता !
व्यक्त होता दो हृदय का यह समर्पण उन क्षणों में–
सृष्टि भर के पेड़-पौदों का कुसुम-शृंगार बन कर।



जिज्ञासा

अरे, मुझे उस ज्योति-सिन्धु की दिखला दो तुम झलक निराली—
छलक-छलक नित जिसकी लहरें आतीं बन ऊषा की लाली !
भरा लबालब वेग-भरा सा क्षितिज-तटी से जो टकराता,
कलकल् नाद तरल लहरों का मञ्जुल खग-गुञ्जन बन आता !
जिसकी हिल्लोलों का दुर्दम बल मानव के मुक्त हृदय में—
विश्व-प्रेम की प्रबल भावना बन उमड़ाता मधु अक्षय में !
दिशा बतादो कोई मुझको ! अरे, किधर वह लहराता रे !
जिसकी लहरों से जल-कण-से उछले हैं ये रवि, शशि, तारे !
बल-खाती सी हिल्लोलों के चिर-चचल वे शिखर समुज्ज्वल—
प्रतिबिम्बित होते बिजली बन, पावस-घनमाला में श्यामल !
मौन-मुग्ध सा कितने अरुणोदय मैं देख-देख कर हारा—
पर उस चेतन सागर का रे, मिल पाया मुझको न किनारा !
मैं चिर सुख से व्याकुल होकर गीत मधुर गा उठता शत-शत—
प्रथम किरण के स्वर्ण-बाण से जैसे बाल-विहग मर्माहत !

प्रिय की सुधि

प्रिय की सुधि ! वह, री !

ले गम्भीर मधुर शीतलता,
झलमल तारों की उज्ज्वलता,
आओ, हरती उर-व्याकुलता—
कोलाहल की भू पर रजनी ज्यों तारकमय, री !
प्रिय की सुधि ! वह, री !

चिर निर्जन मानस-घाटी में—
आओ पुलक लुटाती धीमे,
ज्यों हरियाली शैल-तटी में—
मादक चन्द्र-निशा में मञ्जुल वशी-ध्वनि गहरी !
प्रिय की सुधि ! वह, री !

सिहराती प्राणों के स्तर-स्तर,
मन में गीत उठाती मर्मर,
ज्यों एकान्त विजन में सुन्दर—
दूर सान्ध्य-वन-द्रुम डालों मे मन्द पवन-लहरी !
प्रिय की सुधि ! वह, री !

चञ्चल श्यामल मन-प्रवाह पर—
बिखराओ, नव प्रभा मनोहर।
भावों को दो निज छवि सुन्दर—
शशि की स्निग्ध किरण ज्यों उर्मिल जल पर ज्योति-भरी!
प्रिय की सुधि! बह, री!

चिर विथकित जाने कब का मन—
पा जावे विश्राम-मधुर-क्षण,
प्रेम-नींद सोऊँ बेसुध बन—
ग्रीष्म-पथिक जैसे कदम्ब की छाया में गहरी!
प्रिय की सुधि! बह, री!

मँडराओ प्राणों पर, पगली!
मुँदते मन में मुँदो, छबीली—
सिमटा पाँखें रस से गीली—
मुँदते सान्ध्य कमल में जैसे मधु-लोलुप भ्रमरी!
प्रिय की सुधि! बह, री!

———:———

सरला

सरला— आठ बरस की कन्या, गोरी-गोरी, बड़ी हँसोड़ी,
खिल्‌खिल्‌ हँसती फिरती दिन भर—
चप्पल पहने फट्‌फट्‌ करती, फिरती रहती है घर-बाहर,
बड़ी बड़ी काली आँखें हैं,
भाल, पंचमी-चाँद-सरीखा— सहज-प्रसन्न, स्निग्ध, शुभ्रोज्ज्वल।
लम्बे, चिकने, काले, कोमल, घने, सुगन्धित—
लहराते रहते हैं उज्ज्वल केश बड़े सुन्दर घुँघराले।
छोटी और बड़ी नटखट है— बड़ी लाडली है घर भर की।
स्वस्थ, छरहरी, कोमल काया— स्नेह, रूप, सौरभ की छाया।
जब से भाभी आई घर मे नई विवाहित—
एक मिनट भी दूर नहीं होती है उससे, बड़ा चाव अपनी भाभी का।
कई बार इतरा-इतरा कर, झूम-झूम जाती है उससे, बड़े लाड मे।

× × ×

खुला पड़ा शृंगार-दान है।
बड़े आईने के सम्मुख हो खड़ी अकेली, भाभी है शृंगार कर रही।
सरला आई अपनी भाभी के कमरे मे,
फूलों वाली फ्रॉक पहनकर— हो तैयार सिनेमा जाने।
नये चाँद की सी मुसकाती भाभी ने झट पास खींच कर बड़े स्नेह से—
स्वर्ण-चूड़ियों से आभूषित मक्खन-से चिकने हाथों से—
एक सलाई भर चुपके से, सहज आँक दी हिंगुल की बिंदी माथे पर,
नवल कमल-पँखुरी-से उभरे स्निग्ध गाल पर रेख खींच दी,
और दिखाया शीशे मे मुख।
नटखट सरला वहीं खिलखिला पड़ी जोर से, और लपक कर—
नीचे दौड़ी गई तभी जीने मे होकर।

मार ठहाका दिखलाया क्रम-क्रम से मा को,
ताई को, चाचा-चाची को—
'देखो, यह देखो, भाभी ने क्या कर दिया पकड़ कर हमको !'
धीमे से ऊपर को आई— पोंछेगी भाभी के आँचल से ही उसको।
देख लिया पति-आलिंगन-आबद्ध अचानक निज भाभी को।
(चले गये भैया कमरे में)
भाभी सहमी, आँखों से समझाकर उसको,
ओठों पर उँगली रख, कर संकेत बुलाया—
दिया बताशा और इकन्नी।
किन्-किन् हँसती रही किन्तु नटखट वह—
अपना शीष डुलाती, नयन नचाती,
कहती हुई द्वार पर रुक कर— एक पैर बाहर को रखती—
'कहती हूँ जाकर अम्मा से !'
ओठ काटती, मादक नयनों से समझाती, मुसकाती, निज पास बुलाती,
भाभी थी रह गई खड़ी की खड़ी, हाथ में सींक लिये सी,
नयनों में सकोच पिये सी !
पहुँच चुकी थी पर वह नीचे।

× × ×

खन्-खन् सी कर उठीं चूड़ियाँ—
अरुणोदय की मृदु लाली में राजहंसिनी के कल-रव सी।
और, अधर पर खेल रही थी भीनी मृदु मुसकान मनोहर—
नये चाँद की मृदुल चाँदनी ज्यों सुरभित कचनार-कुञ्ज में।
सेंट-सुवासित मृदुल रेशमी साड़ी से रह-रह उठती थीं—
सौरभ की सुकुमार तरगें।
आभूषण की ध्वनि लगती थी—
मानो लघु-लघु रग-बिरंगी चिड़ियों का कोमल कूजन हो—
नवल अनारों की डालों में, ऊषा की माणिक-आभा में।

बड़री अँखियाँ

वे अश्रु-भरी बडरी अँखियाँ !
काजल-काली बड़री अँखियाँ !
मदमातीं, चौड़ी सीपी-सी,
मोती-से बरसाती अँखियाँ ।

ज्यों पूर्ण चन्द्र से बरस पडे—
सुकुमार चमकते से मोती,
या, नवल कमल से बरस पड़ी—
मधु की बूँदे, बेबस होती ।

काली, पतली, लम्बी भौंहें,
अभिराम नासिका, सुढर ढली,
उभरे कपोल— ज्यों पंकज की—
पंखुरियाँ इस पथ आ निकलीं ।

काले, चमकीले, दीर्घ, सघन—
मेघों-से कुन्तल से घिर कर—
शशि-मुख आलोक लुटाता था,
मानों अनार के पुष्प, अधर !

माखन-सी स्वच्छ मुलायम वे—
गोरी-गोरी बाँहें सुन्दर,
ग्रीवा-कलाइयों में सजतीं—
जंजीर चूड़ियाँ कान्ति-मुखर ।

अंगूर-लता-सी काया पर-
चम्पई रँग की साड़ी सिल्कन-
थी फहर-फहर उठती पल-पल ;
बहता वासन्ती मधुर पवन !

अति पुष्ट पयोधर पर वेष्टित-
तितली-से चटकीले सुन्दर,
मोटे मोटे फूलों वाले-
रंगीन कलात्मक ब्लाउज पर—

टपके, जलते-जलते आँसू,
मोटे-मोटे उजले आँसू,
किस दुख से मन कसमसा उठा-
टप्-टप् टपके कोमल आँसू—

उन काली-काली अँखियों से,
जिनकी बरौनियाँ घनी घनी-
उन्मत्त केकि के छत्र सदृश-
लम्बी काली सी तनी-तनी।

रङ्गिणि

आओ रङ्गिणि, आओ, जीवन में आओ !
सूखी धरती को स्वर्ग बनाती आओ !

हिम-सी चिकनी, सुन्दर स्वर्णिम ऊषा सी—
काया पर सज कर साड़ी इन्दु-कला सी,
अपनी साँसों के हल्के मलय-पवन में—
निज इन्द्र-धनुष-सा पट फहराती आओ !

फैलाती सी आलोक अरुण, अंगूरी,
अब चन्दनियाँ, अब जामुनियाँ, सिंदूरी,
नभ में, शत शत नव दीपशिखाओं के से,
मृदु अरुण चरण के चिह्न बनाती आओ !

रुनझुन्-रुनझुन् मञ्जुल पायल खनकाती,
कलियाँ, तारे, मोती, मणियाँ बिखराती,
निज वीणा से मीठी झंकार उठा कर—
जन-जन के प्यासे प्राण छकाती आओ !

अधरों की लाली से उपजाती पल्लव,
नव स्मिति से उड़ते हंस मचाते कल-रव,
काले नयनों से भ्रमर ; अमल काया से—
कमलों का केसर-गंध उड़ाती आओ !

धीमे-धीमे आओ तुम, हे रसवन्ती—
चाँदनी रात में जैसे पवन वसन्ती,
हिमहासिनि ! कोमल मुक्ता-हास धवल से—
जीवन का तम घनघोर हटाती आओ !

सुकुमार लचकती कटि पर रख मधु का घट,
फहराती भीनी-गंध-सना रेशम-पट,
बाँकी मद-चितवन डाल, मधुर मुसकाती—
धरती पर मधु की धार बहाती आओ !



धरती गावे, नभ झूमे, सागर डोले,
कण-कण पलकें खोलें, पचम मे बोले,
इन्दीवर-कोमल कोकिल-कलकठों से-
सुन्दरता का सदेश सुनाती आओ !

सूखे ठूँठों मे फूट पडे मञ्जरियाँ,
काँटों वाले पेड़ों में आवे कलियाँ,
पट जाय सरस हरियाली से गिरि-कानन-
सौ-सौ रंगो के फूल खिलाती आओ !

काली भौंहों की सरल मरोर सुहावन-
उच्छृ खल मानव-मन की हो सौ बन्धन,
इस मरु-सी सूखी चिर निर्धन जगती को-
अमरों का सब ऐश्वर्य्य लुटाती आओ !

रतनारे, श्यामल, श्वेत, अमिय-विषधारी-
मादक नयनों की चितवन से मनहारी-
ज्ञानी का मिथ्याज्ञान ढहा कर पल में,
जीवन की सोई प्यास जगाती आओ !

उतरो अलकावासिनि ! उतरो अम्बर से,
सुर-सुन्दरियाँ देखें तुमको सुरपुर से,
मृदु पद-गति से तुम तितली-सी लहराती-
राका-रजनी में गीत सुनाती आओ !

दो नई प्रेरणा धरती के कण-कण को,
दो स्वप्न, गीत, मधु, हास व्यथित जन-जन को,
जग को सन्देश सुनाऊँ नित्य तुम्हारा-
मुझमें रस की हिल्लोल उठाती आओ ।

वृन्दावन के यमुना-तट पर

वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वशी,
मधु-वन मे अब राम रचेंगे, मुरलीधर यदुवंशी!

मुरली का स्वर फूटा मधुमय, सिहर उठा भूमण्डल,
नाच उठीं यमुना की लहरें, करतीं कोमल कल्-कल्,
सुन वह मीठी टेर, लपक कर ब्रज-सुन्दरियाँ दौड़ीं,
बालक छोडे, छोडे जलते चूल्हे, गायें छोड़ी,
दूध उफनता पड़ा रह गया, लुढकी जल की कलशी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वंशी!

कृष्ण खडे हो गये मध्य में, खड़ी गोपियाँ घेरे,
वंशी-स्वर के साथ हुए आरम्भ, नृत्य के फेरे,
छम्-छम् पायल, रण्-रण् ककण, बजीं स्वर्ण-किंकिणियाँ,
चमक उठीं हारों की हिलती रंग-बिरंगी मणियाँ,
मन्द ठुमकते गोरे-गोरे चरणो की छवि सरसी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वशी!

माखन-सी कोमल, चाँदी-सी उज्ज्वल, कुन्द-धवल नव—
शरच्चन्द्र की मृदुल चाँदनी छिटक रही है अभिनव,
इन्द्र-धनुष-से वस्त्र रेशमी मधुर पवन में फहरे,
घने सुगंधित चिकने काले केश सुकोमल लहरे,
कुन्दकली-से दाँतों की कोमल रत्नाभा बरसी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वंशी!

ओढनियों के जडे सितारे कौंध रहे हैं झलमल्,
यमुना-जल पर चन्द्र-किरण के चित्र बन रहे उज्ज्वल,
अम्बर में चमचमा रही हैं उज्ज्वल तारावलियाँ,
पेड़ों पर तारों-जैसी ही खिलीं सहस्रों कलियाँ,
शीतल, कोमल, सुरभित हरियाली फैली मखमल-सी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वंशी!



प्रकृति पूर्ण यौवन मे थी, नव सिन्धु सुधा का छलका,
नाच उठा आनन्दपूर्ण हो कण-कण भूमण्डल का !
उमड-घुमड़ कर दिव्य प्रेम के महा सघन घन बरसे,
जल, थल, अम्बर पुलक उठे सब, स्वर-लहरी से सरसे,
प्रेम-तत्त्व साकार प्रकट हो गया अमर-रस-वर्षी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वंशी !

अहा, देखने को वृन्दावन की वह स्वर्गिक झाँकी,
कृष्ण-राधिका और गोपियों की वह शोभा बाँकी,
पूर्ण चन्द्र आकाश-मध्य सब लिए कलाएँ आया,
तारों के दस लाख नयन खोले अम्बर मुसकाया,
फूली नहीं समाती वसुधा, मन में थी गद्गद सी,
वृन्दावन के यमुना-तट पर बजी प्रेम की वंशी !

उस मुरली के मधुर नाद ने त्रिभुवन में रस घोला,
धरती बोली, अम्बर बोला, रस में कण-कण बोला,
हो उन्मत्त प्रेम से उमड़ी यमुना की सब लहरें,
शरद गया, लौटा वसन्त, डोले मधु-लोभी भँवरे,
और, मच गई भूमण्डल में रस की चहल-पहल सी,
वृन्दावन के यमुना तट पर बजी प्रेम की वंशी !



उसकी जय हो !

जिसने पीड़ा का दान दिया,
नित जलने का वरदान दिया,
कंठों को मीठा गान दिया, उसकी जय हो, उसकी जय हो !

पीने को दी विष की प्याली,
खाने को इन्द्रायन-डाली,
पगडंडी दी काँटों वाली, उसकी जय हो, उसकी जय हो !

झंकृत, प्राणों का तार किया,
कर दिया स्वर्ण-अगार हिया,
दे सपनों का संसार दिया, उसकी जय हो, उसकी जय हो !

जिसने भावों के बोल दिये,
ये गीत मुझे अनमोल दिये,
मेरे अन्तर-पट खोल दिये, उसकी जय हो, उसकी जय हो !



मेरी प्राप्ति

शशि को मिला स्वच्छन्द नव—
तारों-भरा नीला गगन
सुकुमार सुमनो को मिली—
गोदी लता की स्नेह-धन,

निर्बाध विचरण के लिए—
जल-राशि लहरों को मिली,

मुझको मिला छाया-रहित—
अविराम पथ, संघर्षमय !

सुकुमार कलियों को अयाचित ही—
मधुर मधु-कण मिले !
पङ्किल सरोवर-अङ्क में—
मकरन्दमय पङ्कज खिले !

मैंने पपीहा बन, जलद से—
स्वाति की थी चाह, पर—

मुझको मिला जग-ताप में
जलता हुआ मानव-हृदय !

जब आँख विहगों की खुली—
पाया प्रभात प्रकाशमय,
जब आँख कलियों की खुली—
सम्मुख मिले अलि प्रेम-मय,

जब आँख तारों की खुली
घर-घर मधुर दीपक जले,

मेरे नयन जब से खुले
मैंने सदा देखा प्रलय !

प्रकृति : जीवन का आधार

यदि धरती पर दूब न होती, विहगों का गुञ्जार न होता,
हरी घाटियों में मुसकाती ऊषा का श्रृङ्गार न होता,
सावन की बौछार न होती, झरनों के कल गान न होते,
यह कोकिल की तान न होती, मधु-ऋतु का त्यौहार न होता,
तो हम जीवन-रस के प्यासे इस मरघट में कैसे जीते !
दो पल बैठ कहीं हम सुख से, यह उधडा उर कैसे सीते ।

यदि धरती पर रग-बिरगे ये मुसकाते फूल न होते,
हरियाली से लदे चमकती सरिताओं के कूल न होते !
चॉद-सितारों वाला नीला मुक्त महा आकाश न होता,
मधुर पवन के मन्द झकोरे सुखदायी अनुकूल न होते—
तो हम मृग-से भोले मानव, ले अपने व्याकुल मन रीते—
घोर मरुस्थल से इस जग में एक घड़ी भी कैसे जीते ।

यदि मानव के लिए जगत में सपनों का ससार न होता,
घायल मन के लिए अश्रु का सुखदायी उपचार न होता,
गीतों का वरदान न होता यदि अन्तर की प्यास बुझाने,
ढहते हुए हृदय को ठडी आहों का आधार न होता !
तो हम मर्म-व्यथा के कैसे भुला अनेकों दुर्दिन बीते—
मन को दे आश्वासन, नव-नव आशाएँ ले कैसे जीते !



मर्म-भरी पीड़ा में

अमृत के लाखों घट भर-भर कर डाले–
फिर भी न अगर मिट पाये मन के छाले !
जीवन की ऐसी मर्म-भरी पीड़ा मे–
आँसू से बढ उपचार नहीं होने का !

ससार बसाये विधि ने लाखों सुन्दर–
जिनमे रहती हैं लाखों सृष्टि चराचर !
पर विधि के जग में कवि के नव सपनों से–
बढकर सुन्दर संसार नहीं होने का !

होते वीणा के तार मधुर स्वर वाले–
कर देते जो हरिणी को भी मतवाले !
पर टूटे मन की वीणा के तारों से–
बढ़कर के कोमल तार नहीं होने का !

कोई हमको लाकर दे विष का प्याला–
जिसमें उठती हो लाल धधकती ज्वाला !
चुपचाप उसे पीले ; तो अन्यायी का–
इससे बढकर सत्कार नहीं होने का !

अन्तिम दिन

जब जलूँगा मैं चिता पर !

मौन होंगे गान मेरे,
मुक्त होंगे प्राण मेरे,

पाप सारे शान्त होंगे, भस्म होगी देह नश्वर !
जब जलूँगा मैं चिता पर !

अग्निमाता गोद लेगी,
और धरती-माँ कहेगी—

'आ रहा चिरकाल से बिछुड़ा हुआ शिशु आज घर पर !'
जब जलूँगा मैं चिता पर !

अश्रु कुछ दृग से झरेंगे,
कुछ हृदय आहें भरेंगे,

सृष्टि चलती ही रहेगी यह बिना क्षण एक रुक कर !
जब जलूँगा मैं चिता पर !



एक दिन

एक दिन मिट जाऊँगा, आह—
हृदय में ले अव्यक्त विषाद,
विश्व में रह जायेगी शेष—
चार दिन मेरी धुँधली याद,

तप्त बाती से निकली क्षीण—
धूम्र की रेखाएँ ज्यों दीन—
तिमिर में मिट जाती कुछ डोल,
दीप के बुझ जाने के बाद !

एक दिन मिट जाऊँगा, आह—
हृदय में ले कर व्यथा अशेष !
पड़ी रह जायेंगी कुछ काल—
करुण यों स्मृतियाँ मेरी शेष :—

विगत लहरों की स्मारक-मात्र—
रेत की रेखाओं का जाल—
जेठ की गर्मी में विकराल,
नदी में रह जाता ज्यों शेष !

हृदय-शिशु

भिक्षुकी के ढीठ बालक-सा—
चपल, मेरा हृदय,
बान जिसकी— माँग उठना
वस्तु सुन्दर, हर समय।
बहुत समझाया— न माना,
अन्त में अब मार खा—
ढाल आँसू, मिसमिसा कर
धूल में पड सो गया!

चन्द्रमा की ओर दोनों
हाथ फैलाए अभय,
था मचलते एक बालक
सा हठी मेरा हृदय।
बहुत बहलाया— न माना,
अन्त मे अब मार खा—
गोद मे ही, चन्द्रमा को
देखता सा सो गया!



मन

जेठ की कटु घाम में सब
सूख जिसका हो गया जल,
और मिट्टी की पपड़ियों से
पटा सा हो धरातल,
तप्त धरती में तड़क कर
निकल आई हों दरारें—
शून्य निर्जल एक ऐसे
ताल-सा मन आज मेरा !

प्रबल झंझा से कि जिसके
पात पीले पड़ रहे हों,
फिर पवन-आघात से
चुपचाप रह-रह झड़ रहे हों,
ग्रीष्म के एकान्त वन-पथ-
पर खड़े ऐसे विटप की—
छिन्न-पल्लव, नग्न सूनी—
डाल-सा मन आज मेरा !

———

उदासी

सन्ध्या की नीरव वेला में
जब दिनकर जाता अस्ताचल,
बाँसों के झुरमुट में चञ्चल
पंछी-दल करता कोलाहल,
तम घिरने पर थका समीरण
सो जाता सूनी डालों में,
तब झींगुर का स्वर सुन मेरा
मन उदास क्यों हो जाता है !

जब भादों की अर्द्ध-निशा में
उमड़-घुमड़ आते हैं बादल,
साँय-साँय कर उठती रजनी
लगती झड़ी, बरसता है जल,
बिजली तड़प-तड़प रह जाती
पेड़ हरहरा उठते सारे,
तब घन का गर्जन सुन मेरा
मन उदास क्यों हो जाता है ।

जब सन्ध्या के बाद चाँदनी
सहज छिटकने लगती फीकी—
रूपवती परित्यक्ता रुग्णा
तरुणी की अति म्लान हँसी-सी !
दूर खजूरों के पेड़ों में
चाँद निकलता धीरे-धीरे,
याद पुरानी कर तब मेरा
मन उदास क्यों हो जाता है ।



दान

तुमने जीवन-दान दे दिया !

मेरी काया तो माटी का दीपक, जो नश्वर कहलाती,
तनिक स्नेह में डूबी जिसमे पडी हुई नन्ही सी बाती ।
तुमने जीवन-ज्वाला देकर, जड़ मिट्टी को प्राण दे दिया !
तुमने जीवन-दान दे दिया !

यदि मै अन्तर की पीडा का यह मधुमय उपहार न पाता—
तो मार्मिक आघातों से वंचित हो तार मृतक रह जाता !
तुमने प्राण झनझना मेरे, मुझको मञ्जुल गान दे दिया !
तुमने जीवन दान दे दिया !

तुमने मुझको वह दे डाला, ओ मेरे अमृत के दानी—
लगती जिससे सृष्टि मुझे, सौ जन्मों की जानी-पहचानी !
तुमने मुझे अमर करने को पीड़ा का वरदान दे दिया !
तुमने जीवन-दान दे दिया !





उदय और अस्त

मैं आया था जीवन-नभ मे
रवि की पहली स्वर्ण किरण-सा !
किन्तु, तुरत ही उस पर निष्ठुर
काले घन घिर आये सहसा ।

मैं लौटूँगा जीवन-नभ से
रवि की अन्तिम स्वर्ण किरण-सा—
जो मिटने से पूर्व, जगत् का
कण-कण कर देती कंचन-सा !



मुक्ति की ओर

चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें !

चलें उधर जिस ओर मुक्ति चरणों पर झुक-झुक आती हो,
मुक्त पवन में हरी खेतियाँ कोसों तक लहराती हों,
घने आम-कुञ्जों में बैठी कोयल तान लड़ाती हो,
मुक्त विहंगों की अम्बर में पाँतें उड़ती जाती हों,
चौड़ी नदियाँ बहती जाती हों नीले आकाश तले,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें !

जहाँ हरिण के दल के दल उन्मुक्त चौकड़ी भरते हों,
कल्-कल् स्वर से मीठे जल के निर्मल झरने झरते हों,
स्वर्ण-उषाएँ नवल और सूर्यास्त मनोहर सिन्दूरी—
घने कुञ्ज की हरी भूमि पर आ चुपचाप उतरते हों,
चन्द्र-किरण खींचा करती हो चित्र लहरियों पर उजले,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें !

जल थल नभ में जहाँ प्रेम की मीठी वंशी बजती हो,
मन की नव मधुमयी कल्पना नित स्वच्छन्द विचरती हो,
जहाँ हृदय का प्रेम मुक्त हो, हृदय-वरण स्वच्छन्द जहाँ,
जीवन-धारा नील-विमल अगहन-गंगा सी बहती हो,
प्रेम भरे मन लाज छोड़कर जहाँ गले से गले मिलें,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें !

अरे हृदय, यह चार दिनों का छोटा सा तो जीवन है,
आत्मा का आनन्द हमारे जीवन का संचित धन है,
नहीं चाहिए राज्य और ऐश्वर्य शक्ति अधिकार हमें,
यहाँ पागलों की बस्ती में जीना तो पागलपन है।
किसी विजन की मृदुल डाल पर चल कर फूलें और फलें,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें !

हि
मा



यहाँ अधर पर हम दो पल भी रख पाते मुसकान नहीं,
मुक्तकंठ से गा पाते हम अपने मधुमय गान नहीं,
हृदय खोल कर प्यार कर सके यह जग ऐसा स्थान नहीं,
हीरों की तो यहाँ परख है, हृदयों की पहचान नहीं।

हरी-भरी है प्रकृति, किन्तु सब जीवन झुलसे और जले,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें।

मोती-सा मन यहाँ झुलस कर हाय, भस्म हो जाता रे,
आत्मा का आलोक यहाँ तो निष्फल ही खो जाता रे,
अभिलाषा का चाँद हस्तगत यहाँ नहीं हो पाता रे,
भोला मानव रोता-रोता बालक-सा सो जाता रे,

वहाँ चलो रे, जहाँ कभी भी हृदय, हृदय को नहीं छलें,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें!

चलो हृदय, हम वहाँ रहेंगे जहाँ अमर धन पायेंगे,
मधुपों-सा गुञ्जार करेंगे, झूम-झूम मँडरायेंगे,
जीवन-मधु भी पायेंगे यदि काँटों में छिद जायेंगे,
श्रम करते, जीवन-सन्ध्या में शतदल में मुँद जायेंगे,

मुक्ति-प्रात में निकल उड़ेंगे, तृप्त मधुप जैसे निकले,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें!

मुक्ति

१

जीवन में मन, वचन, कर्म का यदि हो गया समन्वय—
मुक्ति और बन्धन फिर क्या रे, कैसा जन्म-मरण-भय !
स्वर्ग-मुक्ति की चाह नहीं, मैंने न कहीं ली दीक्षा,
बैठा हूँ उर खोल शुक्ति-सा, करता स्वाति-प्रतीक्षा !
निर्मल जल की मृदुल लहर-सा बना रहा हूँ जीवन,
आना हो तो आ जायेगा चाँद उतर सौ योजन ।
सहज साधना मुझको प्रिय है, मानव-धर्म अभीप्सित,
इस पथ पर ही मिल जायेगा मुझको जीवन-अमृत !
बहता रहे भावना का नित मधुर-मधुर मलयानिल ।
सहज-सहज मेरे मन की सब कलियाँ जायेंगी खिल !

२

करुणा स्नेह त्याग सेवा की
सहज निभाते रीत—
इसी व्योम के तले, प्रेममय
गृह के बीच पुनीत—
मानव को इस वसुधा पर ही
मिल जायेगी मुक्ति,
खुले हृदय में, घर बैठे,
मुक्ता पा जाती, शुक्ति ।



जीवन : मुक्ति या बन्धन

मैं समझ न पाता, क्या है मानव-जीवन !
यह जीवन, मधुमय मुक्ति या कि कटु-बन्धन !

क्या यह जीवन है मञ्जुल गुन्-गुन् करते,
स्वच्छन्द गगनमंडल गीतों से भरते,
हो रूप-विवश, मृदु कमल-कोष में मधुमय—
है एक रात के लिए मधुप का बन्धन !
मैं समझ न पाता, क्या है मानव-जीवन !
यह जीवन, मधुमय मुक्ति या कि कटु-बन्धन !

या, यह जीवन है रे दिन-रात निरन्तर—
दोनों-मुख-जलती लकड़ी के अभ्यन्तर—
असहाय कीट का जलना है ज्वाला में,
हो जाना भस्मीभूत वहीं बन्दी बन !
मैं समझ न पाता, क्या है मानव-जीवन !
यह जीवन, मधुमय मुक्ति या कि कटु बन्धन !



कौन ?

गहरा नीला आकाश! चमकती धूप! मखमली हरियाली!
हैं पवन-झकोरे मधुर-मधुर, सरिता— लहराते जल वाली!
विस्तृत मैदानों के आगे लेटीं नीली गिरिमालाएँ!
हैं मौन खडे भावुक तरुवर, स्नेहाकुल फैला शाखाएँ!
मैं देख रहा इस शोभा को, विस्मय-विमुग्ध-सा, हुआ मौन।
रोमाञ्च हो रहा रे मुझको— इस सुन्दरता का स्रोत कौन।



निर्जन तट

शांत और एकान्त नदी तट,
कल्-कल् कर बहता सरिता-जल !
नील गगन के तारागण से—
प्रतिबिम्बित, जल का वक्षस्थल !

वह खजूर का पेड़ खड़ा है—
सरिता-तट पर कमर झुका कर,
निश्चल मौन शिखर-पत्रों से—
निकल रहा नवमी का हिमकर।

रजत-नूपुरों की मणियों-से—
बिखर रहे अम्बर में तारे !
निद्रा में डूबे-से लगते—
खेत, विटप, पल्लव, तृण सारे !

शान्त वनस्पति, शान्त दिशाएँ,
म्लान चाँदनी फैली उन्मन !
गूँज रहे झाड़ी-झुरमुट मे—
झिल्ली-झींगुर झन्नझननझन्।

अहा, किधर से फूटा मञ्जुल,
सहसा ही यह वंशी का स्वर !
इसमें कितनी व्याकुलता है,
प्राण खिंचे-से आते बाहर !

चला जा रहा युवक इधर से—
क्या कोई ग्रामीण, प्रणय-रत ?
वेणु बजाता-सा, निहारता—
शशि में निज श्यामा की मूरत !

कितनी मादक नीरवता है !
कितना नीरव है नभमण्डल !
मधुर पवन-लहरों में बरबस—
तप्त हृदय हो जाता शीतल !

ठण्डी रात ! बैलगाड़ी सी—
चली जा रही पथ से निर्जन,
बैलों की घंटी से कढ़ता—
जाता स्वर, टुन् टुन् टिन् टुन् टन !

जी करता है, बैठ यहीं पर,
पहरों देखा करूँ निरन्तर—
चन्द्र-किरण-चित्रित लहरों की—
नीरव कोमल लीला सुन्दर !

गेंदा के फूल

इस मधुर शिशिर-सूर्यातप में—
तरु-पौदे नहा रहे सारे,
देखो, गेंदा के फूल खिले—
कैसे गदरारे-गदरारे !

उन स्वस्थ, गुदगुदे, इतराते,
शिशुओं-से ये खिल रहे फूल—
खिलखिला रहे हों आँगन में,
जो खींच-खींच माँ का दुकूल !

जो अभी अधखिले— लगते वे,
कौतुकी बालकों के समान ,
निज अट्टहास को दबा खडे,
जो मुख में,— बन भोले अजान !

गहरे नीले आकाश-तले,
ये गेंदे केसरिया-पीले,
सिर-चढ़े लाड़ले बच्चों-से—
लगते हैं कैसे गर्वीले !

कितना नीला आकाश, अहा ,
गहरा स्वप्निल-सा धूपोज्ज्वल !
ऐसे ही अम्बर के नीचे—
सुन्दर लगता गेंदों का दल !

जब पवन उनींदा बह उठता,
गेंदे हिलते रल्मल्-रल्मल् !
केले के चौडे पत्ते भी,
लहरा उठते ढल्पल्-ढल्पल् !

हो रहे हर्ष में गद्गद ये,
फूले न समाते अहा सभी,
ऐसा उल्लास न क्यों मेरे—
प्राणों में आता पल भर भी !

सरसों फूली

नीरव निर्जन गगा-तट पर,
ढेरों पीली सरसों फूली।
मधुर शिशिर के सूर्यातप में—
ढेरों पीली सरसों फूली!

हिम-से शीतल पवन-झकोरे,
बहते आते हर् हर् हर् हर्!
किलक उठी रे, मचल उठी रे,
रूम-झूम कर सरसों झर्मर्!

कितना नीला नभमण्डल है,
कितना नीला, गगा का जल!
कितनी घनी अहा, हरियाली,
धूप अहा, कितनी है उज्ज्वल!

अरहर के पौदों से उठ कर,
आया पवन-झकोरा सत्वर,
सरसों की हरियाली सारी,
सहसा यों कर उठती मृदु स्वर—

परम विनोदी पति के द्वारा—
चिमटी भर लेने पर हल्की,
सलज कामिनी जैसे, कोमल—
कर उठती धीमी-सी सी-सी।

सरसों के पौदे लहराते,
गंगा की लहरें लहरातीं,
और मुक्ति के सुख से विह्वल—
चंचल चिड़ियाँ उड़ती जातीं!

मेरा मन भी बहता जाता—
नीले जल की लहर-लहर पर,
देख-देख सरसों की शोभा—
नाच रहा है पैंगे भर-भर।

—:—

खेत की ओर

रूखे केश, ओढ़नी मैली,
ग्रामीणा जा रही खेत पर,
उन्मन-उन्मन, धीमे-धीमे,
चरण-चिह्न छोड़ती रेत पर!

हाथों में हाँडी मट्ठे की,
सिर पर धरी पोटली मैली,
अनायास बढ़ते जाते पग,
मन में है चल रही पहेली!

वहाँ खेत में डाल कहीं हल,
जीर्ण हड्डियों का वह ढाँचा,
रूखे-सूखे दो टुकड़ों की,
करता होगा बैठ प्रतीक्षा!

फटे बिवाई-वाले सूखे,
पाँवों ने कितना पथ नापा!
चिर अभाव में गई जवानी,
असमय ही आ गया बुढ़ापा!

उदर-पूर्त्ति हित, ऋण में घर का—
हाय, बिक गया केश-केश है,
तन ढँकने को वस्त्र न पूरा—
इस सीता के पास शेष है!

दो क्षण ठहर गई सुस्ताने,
वह बबूल के तरु के नीचे!
मानव को विश्राम कहाँ, रे
कुत्ता सोया आँखें मींचे!

लू चलती है, धूप कड़ी है,
काया से कुछ मोह नहीं है!
जीवन से अनुराग नहीं अब,
अन्यायी से द्रोह नहीं है!

सह जीवन की लू के झोंके—
झुलस गई कुन्दन-सी काया,
जीवन का है ताप बहुत! रे,
क्या दो पल बबूल की छाया!

पूनो का चाँद

देखो पूनो का चाँद नवल,
कितना शीतल, कितना उज्ज्वल !
नीलम के आँगन मे शोभित,
जैसे चाँदी का थाल धवल !
पीपल-तरुओं से निकल-रहा—
यह चाँद मधुर ऐसा लगता—
शिशु, माँ के कन्धे पीछे-से,
प्रकटा हो ज्यो करता 'त्या-त्या' !
यह धुनी रुई-सा स्वच्छ विमल,
यह दुग्ध-धवल, हिम-सा शीतल,
चाँदी-सा चमकीला उज्ज्वल,
किरणों का स्पर्श सुखद लगता ;
जैसे, शिरीष के कुसुमों के—
सुरभित पराग के तंतु मृदुल,
या शिशु के गभुआरे कुन्तल !
यह गोल-गोल, गोरा, झलमल,
ज्यों मधुवन में तमाल-तरु-तल—
श्री कृष्ण-अंक से सटी खड़ी—
राधा का सस्मित मुखमण्डल !

यह चाँद किलकता है ऐसे—
कोई नटखट मुन्ना जैसे—
निज नन्हें हाथों से मासल—

निज कार्य-निरत माँ को अविचल,
क्रीड़ावश सहसा मार, चपल,
भग जाता हो बचने निष्फल!
माँ मन मे तो अति आह्लादित,
बाहर, कृत्रिम-क्रोधित, सस्मित,
उठती हो देने दण्ड अमित !
तत्काल पकड़ मे आने पर—
शिशु, गोरे शशि-मुख से सुन्दर
खिल्-खिल् कर अपना हास धवल,
फैला देता हो तरल-तरल !
माँ, 'देख, बताऊँ तुझे अभी'—
कह उठती हो सक्रोध जभी !
पर रोक न पाती हँसी सरल,
वह भी हँस पडती शिशु से मिल !

यह ग्राम-ताल-तट पर सुन्दर,
चाँदनी रात का शात पहर।
मृदु पवन-लहरियो से, जल की,
कँप-कँप उठती है लहर-लहर !
नीरव शिरीष के तरुओं की
टहनियाँ भूमि-चुम्बन करतीं,
दो पल हिल कर रुक जातीं फिर
निद्रा मे करवट ले ज्यों, स्थिर।

पीपल के पेड़ों से रह-रह,
कोमल मर्मर-स्वर उठता वह,
चिकने पत्तों पर घने हरे,
चाँदी के सौ चुम्बन उतरे!
वंशी का स्वर आता मनहर,
जूही की आती गन्ध-लहर!

यह चाँद गगन में एकाकी—
हँसता लगता कितना सुन्दर!
पीपल के छितरे शिखरों से
चढ़ता लगता कितना मनहर!
ज्यों स्वस्थ किसी शिशु की जननी,
निज पुष्ट पयोधर से उन्नत,
नयनों के तारे निज शिशु को,
भर-पेट सुधोपम दूध पिला,
रंगीन खिलौना दे कोई,
आँगन में डाल, चली जाती—
गो-बछड़ों में, गो-दोहन को!
बच्चा, आँगन में एकाकी
भर-भर कर गहरी किलकारी-
टपकाता मधु-सी लार सरस,
आँगन में मस्त पड़ा रहता,
उल्टा-सीधा, निश्चिन्त परम!

यदि हाथ पड गई गेहूँ की
या चावल की कोई डलिया,
तो खींच उसे लघु हाथों से—
बिखरा देता हो सब कण-कण,
जैसे, नीले नभ मे तारे !

यह चाँद मुझे लगता ऐसा—
ज्यों कृष्ण कन्हैया गोकुल मे,
माखन-मिसरी की चोरी कर,
सुनसान किसी गोपी-गृह मे,
चुपचाप निकल कर भग आया—
हँसता हो साथी-संगी मे !
पकडे जाने पर गोपी से—
धमकाये जाने पर माँ से—
अधिकाधिक हँसता जाता हो,
मन मे पूरा निःशंक, निडर !

ग्राम-वधू

ग्राम-वधू जल भरने आई गंगा-तट पर।
एकाकी है, निर्जन तट है, दूर नहीं घर।
सिर पर माटी का घट सुन्दर,
लाल ओढनी, देह साँवली, पुष्ट पयोधर।
आती नंगे पाँव धरा पर अधर-अधर धर।
तट से थोडी दूर सामने—
छायादार घने कुंजों में है वनपुरवा गाँव निकट ही,
मल्लाहों की छोटी बस्ती, शांत-सुखी रहते हैं धीवर—
कच्चे जिनके माटी के घर।
वहाँ आम के पेड घने हैं फूले-फूले, श्यामल-श्यामल—
नीम, सफेदा, बरगद, कटहल,
अमलतास जामुन औ' पीपल।
जिनमें ऊँचे खडे ताड के और खजूरों के गर्वोन्नत—
पेड बडे लगते हैं सुन्दर।
आई दूर वहीं से चलकर,
अरहर के खेतों की उर्मिल पगडंडी पर।

नीरव नील गगन मे फैले मृदुल धुनी रूई से उज्ज्वल—
कहीं कहीं कुछ झीने बादल— दुग्ध-फेन-से श्वेत सुकोमल।
चिडियाँ चीं-चीं करती उड़तीं, फुर्फुर्-फुर्फर्,
नभ मण्डल में, तरु से तरु पर।
विपुल शरद की मधुर धूप में
दृश्य नवल लगता यों सारा—
बाला राजकुमारी की निद्रा में
सुखमय प्रणय-स्वप्न सा!

कितनी विस्तृत है यह गंगा— रामनगर तक फैला है जल—
नीला, चिकना, शीतल, निर्मल, उर्मिल, उज्ज्वल,

मधुर घाम में चमक रहा जो झल्मल्-झल्मल् ।
भोले शिशुओं के उन तुतले अल्प विचारों जैसी कलकल
लहरें उठती-गिरतीं पल-पल ।
हीरे की आभा-सी जिनकी छाया करती रल्मल्-रलमल्-
होती है प्रतिबिम्बित चंचल,
तट-तरुओं के कठिन तनों पर ।
तारों की वर्षा-सी होती लगती सूरज की किरणों से,
बीच धार में, कुछ दूरी पर ।
लो, ढलान से उतर रही अब,
तिल के मृदु-मृदु नीले नव कुसुमों से शोभित,
पीले फूलों से इतराते सरसों के श्यामल पौधों के-
बीच बनी पगडंडी से हो ।

चढ़ा ओढनी, जल में उतरी अब घुटनों तक,
रखा घड़ा पानी पर दो पल, जल हिलराया छल्छल्-छल्छल्,
भर कर घड़ा उठाया भारी,
झूम उठी यौवन में सारी,
काया गदरारी गदरारी,
काढ तनिक सा घूँघट,
सिर पर रख घट,
पगडंडी पकड़ी निज सँकरी,
जाती झटपट, लहराती लट, फहराती पट ।
मादक गति से और पवन से-
पड़ते हैं साड़ी में सलवट ।

माटी के घर

कैसे सुन्दर लगते हैं ये माटी के घर !

खड़िया से भीतें पुतीं, राम-रज से अंकित,
हैं ग्राम-कला में जहाँ हरे सुग्गे चित्रित,
गोबर के सौंधे स्वच्छ लिपे से आँगन मे—
नीमों की रल्मल् छाया लगती रोमाञ्चित !

सरिता-तट के सरसों के खेतों से उठ कर,
वन-तुलसी की भीनी-भीनी ले गध मधुर,
तरकारी की बाडी के पौधे लहराता,
गृहिणी के केश हिलाता आता पवन इधर !

हैं सूख रहे उपले, तरुवर हैं मौन खडे,
जंगली कुसुम कुछ फूल रहे हैं बडे बडे—
भागे जाते हैं देखो अपनी पूँछ उठा—
उन नीमो के नीचे से गैया के बछडे ।

लहराते से चौडे-चौडे पत्तों वाले—
केले के सुन्दर पेड बहुत ही हरियाले !
उनकी ढुल्मुल् छाया में गेंदे गदरारे—
किस सुख से हैं फूले न समाते, मतवाले !

धूपहला नीला व्योम तना वैसा सुथरा,
है खेत चने का कैसा सुन्दर हरा-भरा,
उस वायु-विकम्पित तरु बबूल की छाया का—
मृदु जाल मखमली पौधों पर कैसा उतरा !

यह इधर घनी है कितनी श्यामल अमराई,
(जिसमें से चक्कर खाती पगडंडी आई)
हैं धूप-छाँह के जिसमें कितने चित्र बने,
फैली चन्दनियाँ धूप शरद की सुखदायी ।



मञ्जरियों से होतीं जब डालें गदराई,
मधु-गन्ध लिये चलती जब हल्की पुरवाई,
तब हो उठते होंगे प्रेमी-उर मिलनातुर,
नयनों में सपने भरती होगी तरुणाई!

इसमें ऊषा युग-युग आकर डोली होगी,
कोयल डालों में छिप युग-युग बोली होगी,
वंशी की ध्वनि के साथ, कलाधार ने अपनी—
चाँदी की कितनी निधियाँ ला खोली होगी!

रूपा के चिकने श्याम-सलोने मुखड़े पर,
ठोड़ी का गुदना लगता है कितना सुन्दर—
अल्हड़ता से कैसे उलझे हैं केश घने,
गालों का काला तिल नयनों को लेता हर!

जब सूरज होता सौम्य तनिक तीसरे पहर,
मनमोहक मादक ग्राम-शांति में मधुर-मुखर—
केलों-नीमों की छाया कितनी ममता से,
कच्ची भींतों को लेती आलिंगन में भर!

ये शीशम, केले, बाँस, और पीपल, कटहल,
निर्भीक विहंगों के रहते नित रंगस्थल!
हो उठते हैं स्वर्णिम, ऊषा की लाली में,
सिन्दूरी होते, जब जाता रवि अस्ताचल!

उन मौन खजूरों के पेड़ों में चिन्तापर,
ढल रहा सामने सूरज दूर क्षितिज तट पर,
लाली उतरी गेहूँ के खेतों पर सुन्दर,
झाड़ी-झुरमुट में कूज रहे पक्षी जी भर!

शीशम के पेड़ों के पत्तों से छन-छन कर,
आँगन में ढलती होगी जब चाँदनी मधुर,
तब धूल भरे मुन्ना को ले माँ आँगन में—
गा उठती होगी चूम साँवला मुख सुन्दर।

दीये की डिबिया रख दरवाजे पर लछमन,
अपनी दादी को बैठ सुनाता रामायन,
कुछ बँटता होगा ध्यान, कभी जब आँगन में—
गायों की ग्रीवा की घंटी बजती टुन्-टन्।

× × ×

है कितनी करुणा यहाँ और कितनी ममता!
क्या इसीलिए है यहाँ अविद्या, निर्धनता?
ये ग्राम— स्वर्ग के हाय, अस्थि-पञ्जर भू पर,
लायेगा जीवन-रक्त कौन, है किसे पता!

युग-युग से शोषित ये गाँवों के नारी-नर,
हैं अर्द्ध-नग्न, चिर मूढ़, क्षुधित, ऋण से जर्जर!
ये जीवन के हित केवल ईश्वर पर निर्भर,
नीचे इनके धरती, ऊपर सूना अम्बर।



चिड़ियाँ

खेल रही चिड़ियाँ चञ्चल !
अरुणोदय की फैल रही है धूप सुनहली सी कोमल !
खेल रही चिड़ियाँ चञ्चल !

देख नीलिमा नभमण्डल की,
वायु सुगन्धित हल्की-हल्की,
दूब मोतियों वाली कोमल,
और लालिमा अरुणाचल की,
मन में नव उल्लास गया भर, चहक रहीं सब पुलकाकुल !
खेल रही चिड़ियाँ चञ्चल !

कितना कम्पन, कितनी थिरकन,
है उल्लास कि जिसका अन्त न,
है संगीत-भरा स्वर इनका,
ये प्रति-पल जागृत, चिर चेतन,
खुली धूप में, खुले पवन मे, मुक्त बितातीं जीवन-पल !
खेल रही चिड़ियाँ चंचल !

कोई नीचे दाना चुगती,
चोंच गड़ाती, भूमि कुतरती,
और परस्पर मुख-चुम्बन कर,
तन में पुलक-प्रकम्पन भरती,
रोमिल कोमल अंगों में निज चोंच गुदाती स्नेह-विकल !
खेल रहीं चिड़ियाँ चचल !

देखो, करती ची-चीं-ची-च्चट्-
लगा रही हैं सब मिल कर रट,
अर्र्र्र्, यह क्या हुआ अचानक,
पलक मारने मे लो झटपट-
फुरफुर् फुर्र्र् फुर्र्र् कर नभ मे दल की दल उड़ गई सकल !
खेल रहीं चिड़ियाँ चचल !

चाहे कॉटों की डाली हो,
या शाखा कलियों वाली हो,
शिशिर हो कि हो भोर वसन्ती,
मरुथल हो या हरियाली हो,
इनके कंठों से लहराता वही मुक्ति का स्वर अविरल !
खेल रहीं चिड़ियाँ चंचल !

दिव्य चेतना का पा लघु कण,
हुआ सफल रे इनका जीवन,
पाया जीवन-अमृत इन्होंने,
थिरक रहा तन, छलक रहा मन,
है स्वतंत्र तन, ईश्वरमय मन, कंठ मधुरतम, चरण चपल !
खेल रहीं चिड़ियाँ चंचल !

हि
मा



इनका लड़ना बस दो पल का,
सहज हृदय है भोला हल्का,
मानव से क्या साम्य, अरे—
इन प्रेममयी चिड़ियों के दल का!
नरक किया उसने भू-सुरपुर, स्वर्ग इन्होंने यह जंगल!
खेल रहीं चिड़ियाँ चंचल!

मैं शिक्षित हूँ, सभ्य, सुसंस्कृत,
कवि, वक्ता, पंडित सम्मानित,
शत-शत ग्रन्थ पढ़े हैं मैंने,
पर मैं उस रस से चिर-वंचित—
जिसका निर्झर फूटा करता इनके कण्ठों से कल्-कल्!
खेल रहीं चिड़ियाँ चंचल!



गीत

१

ग्राम-विरहिणी दीप जलाती !
पिया गये परदेस, न आई अब तक हाय, पहुँच की पाती !
ग्राम-विरहिणी दीप जलाती !

एकाकी घर, सूना आँगन !
ज्वर से पीड़ित बच्चे का तन !
भर कर तेल स्नेह का गहरा, डाल भावनाओं की बाती !
ग्राम-विरहिणी दीप जलाती !

दीपक रख तुलसी के नीचे,
हाथ जोड़, पलकों को मींचे,
बार-बार झुक, आँचल फैला, कुलदेवी की क्षेम मनाती !
ग्राम-विरहिणी दीप जलाती !

पल-पल जोह रही पति-आगम,
लौट कुशल से आवें बालम,
मन भयभीत, टिमकता दीया, रात अँधेरी बढ़ती जाती !
ग्राम-विरहिणी दीप जलाती !



२

शिशु को चाँद दिखाती माता !
खिली चाँदनी कुन्द-कुसुम-सी, मधुर पवन लहराता आता !
शिशु को चाँद दिखाती माता !

आँगन मे ले गोद ललन को—
कहती— 'चन्दा-मामा देखो !'
किलक-किलक वह नन्ही-नन्ही बाँह उठाता— हाथ न आता !
शिशु को चाँद दिखाती माता !

असफल हो, रो उठता निर्बल,
भाव जताता— 'दे माँ, दे चल !'
अश्रु बहाता, माँ थुपकाती, लोरी गाती, वह सो जाता !
शिशु को चाँद दिखाती माता !

ऐसे ही, मानव जीवन भर—
रोता सुख के लिए निरन्तर,
धरती-माता बहला देती, वह रो-धो कर चुप हो जाता !
शिशु को चाँद दिखाती माता !

चमक रहे अम्बर में तारे !
दूर— मरण की इस दुनियाँ से, वे प्रकाश के बालक सारे !
चमक रहे अम्बर में तारे !

धरती के प्राणी सब थक कर—
सोये, ओढ़ तिमिर की चादर,
मुक्ति-लोक के वासी ऊपर, करते क्या-क्या मौन इशारे !
चमक रहे अम्बर के तारे !

वे सब हैं मानों यों कहते—
'जग में कैसे प्राणी रहते !
कितना भार व्यथा का सहते, बेबस से फिरते बेचारे !'
चमक रहे अम्बर में तारे !

सोच मानवों की पीड़ा को,
और नियति की कटु क्रीड़ा को,
अर्द्ध निशा में सिहर-सिहर उठते हैं वे करुणा के मारे !
चमक रहे अम्बर में तारे !

———

४

कितनी मधुर वह रात थी!

तारों भरा आकाश था,
मन में भरा उल्लास था,
बहता उनींदा सा पवन, नव चाँदनी अवदात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!

थे प्राण सावन-से हरे,
थे कण्ठ गानों से भरे,
था तन कदंब-प्रसून-सा, मधु की सघन बरसात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!

उड़ स्वप्न के क्षण वे गये,
चिर वेदनाएँ दे गये,
मैं सत्य समझा था उसे, रे स्वप्न की जो बात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!

सुख के अमर वे अल्प क्षण,
आगे सदा को शूल बन,
कसका करेंगे रात-दिन, यह बात किसको ज्ञात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!

५

वे सुन्दर से दिन बीत गये।
अनुराग-भरा रवि अस्त हुआ, सुधि-मेघ सुनहले शेष रहे।
वे सुन्दर से दिन बीत गये।

जीवन मे कुछ दिन आये थे–
जो मधु के घट भर लाये थे।
वे अरुणोदय-से रह कुछ पल, सन्ध्या-से लौट गये उल्टे।
वे सुन्दर से दिन बीत गये।

गूँजी थी मादक स्वर-लहरी,
कानों में दो पल ही ठहरी।
कलियों की भीनी गन्ध उठी, लुटते छवि के ससार रहे।
वे सुन्दर से दिन बीत गये।

अब उस सुख की स्मृतियाँ मधुमय–
हैं वेध रहीं सुकुमार हृदय।
अब पहले सा ससार कहाँ, कल हास गया, मधु गीत गये।
वे सुन्दर से दिन बीत गये।

देखो रे, अब उजड़ा उपवन,
नंगी डालें, यह तप्त पवन,
विकराल बगूलों में कैसे जाते सब सूखे पात बहे।
वे सुन्दर से दिन बीत गये।

६

वह कथा सुन क्या करोगे !

नव वसन्ती चाँदनी में,
बह रही मृदु वायु धीमे,
इस समय तुम भग्न उर की चिर व्यथा सुन क्या करोगे।
वह कथा सुन क्या करोगे !

भूमि में प्राचीन खँडहर—
सो रहे चुपचाप दब कर।
खोद कर क्यों देखते हो, तुम अभी आहें भरोगे।
वह कथा सुन क्या करोगे !

वह व्यथा की है कहानी,
पड़ गई अब तो पुरानी।
जल चुकी सम्पूर्ण बाती, स्नेह भर कर क्या करोगे।
वह कथा सुन क्या करोगे !



८

'बीती बातें मत याद दिला'

जब मौन नहीं पलकों से
नैनों चमकीली रहे,
जब मौन नहीं पलकों से
कलियों से कलियों की बातें !
कोमल हिरन के कुटुम्बों-सा—
मन, आज हुआ पाषाण-शिला !
बीती बातें मत याद दिला !

वह एक वसन्ती रजनी का
सपना था, जो कब टूट गया !
जल-धारा में दो तिनकों का
संयोग हुआ था, छूट गया !
वह बजती वीणा मौन हुई,
निस्सार न टूटे तार मिला !
बीती बातें मत याद दिला !



८

मोती का सा मन टूट गया !
यह टूट गिरा पाषाणों पर, बे-सुध हाथों से छूट गया !
मोती का सा मन टूट गया !

यह मन था वह अनबिंध मोती—
जिसमे झलमल आभा होती,
अब नही पिरोया जा सकता, टूटे की शोभा-सुषमा क्या !
मोती का सा मन टूट गया !

यह हृदय नहीं तरु का पल्लव,
फिर-फिर लगना जिसका सम्भव ;
पतझार हुआ तो टूट गिरा, मधुमास लगा, फिर फूट गया !
मोती का सा मन टूट गया !

अब हो न सकेगा वैसा मन—
जैसा अरुणोदय का हिम-कण,
पाटल-पँखुरी पर मोती-सा स्वाभाविक ढरका हुआ नया !
मोती का सा मन टूट गया !



६

इस पीड़ा का उपचार न कर !

तू छेड़ न बजती वीणा को, निस्पन्द— हृदय का तार न कर !

इस पीड़ा का उपचार न कर !

होता है जिसका भग्न, हृदय,

उसके जीवन मे मधु अक्षय !

तू नष्ट मनोहर मेरे इन मधु-सपनों का संसार न कर !

इस पीड़ा का उपचार न कर !

इस मन को जलता रहने दे,

गीतों का झरना बहने दे !

दूँ आलिंगन सबको अपना, अवरुद्ध हृदय का द्वार न कर !

इस पीड़ा का उपचार न कर !

कण-कण से मेरी प्रीत हुई,

पीड़ा, जीवन-संगीत हुई,

कड़वी प्याली पी लेने दे, सादर अपने सिर-आँखों धर !

इस पीड़ा का उपचार न कर !



दूर गगन में टूटा तारा।
फैला नीरव अँधियारी में, प्राणों का उजियाला सारा!
दूर गगन में टूटा तारा।

नभ में देखो लाखों तारे,
साथी थे सारे के सारे,
हाय, न इसको अन्त समय में दिया किसी ने तनिक सहारा!
दूर गगन में टूटा तारा।

टूट गिरा यह तारा ऐसे–
दुखिया के नयनों से जैसे–
याद पुरानी हो आने पर, मौन टपकता आँसू खारा।
दूर गगन में टूटा तारा!

एक दिवस क्या मैं भी यों ही,
जीवन-पथ का थका बटोही–
साँस तोड़ कर टूट गिरूँगा, एकाकी— विपदा का मारा।
दूर गगन में टूटा तारा!

जग में चार दिनों का संगम,
कब रुकता रे, जीवन का क्रम,
बुदबुद जाता फूट, न रुकती है बहते पानी की धारा।
दूर गगन में टूटा तारा!

११

लो, निशा अब जा रही है !

प्रथम मधु-निशि में लजाती,
चन्द्र-मुख पट मे छिपाती–
लाजवन्ती कुलवधू-सी नव उषा मुसका रही है !
लो, निशा अब जा रही है !

मृदु किसी धीमे चरण की–
रजत-पायल से बिखरती–
मञ्जु ध्वनि-सी, विहगियों की चहक मन को भा रही है !
लो, निशा अब जा रही है !

अर्द्ध-निद्रित तरुण कलियाँ–
सुन रहीं अलि की मुरलियाँ !
स्वप्न देखे बहुत, अब घड़ियाँ मिलन की आ रही हैं !
लो, निशा अब जा रही है ।

वायु नव कलियाँ खिलाती–
मृदु लताएँ गुदगुदाती–
नील निर्मल नीर में रोमाञ्च भरती आ रही है !
लो, निशा अब जा रही है !

हि
मा



नीड़ तज लघु विहग-शावक
लौटता उड़ चार क्षण तक,
पाँख में अब शक्ति एकाकी भ्रमण की आ रही है !
लो, निशा अब जा रही है !

× × ×

स्वर्ण का वह तीर छूटा,
तिमिर का प्राचीर फूटा,
पक्षियों की पाँति जयजयकार करती जा रही है !
लो, निशा अब जा रही है !